मानव मन्दिर

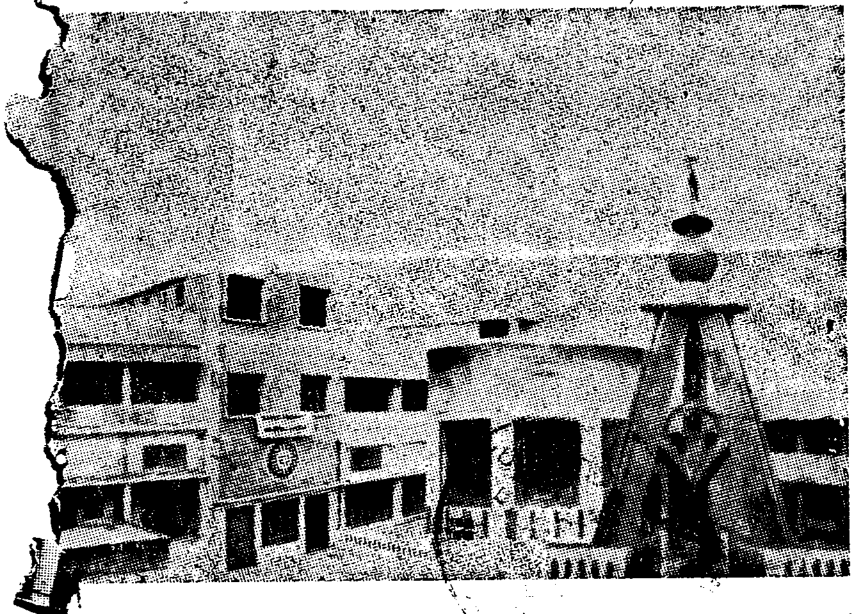

फकीर लायब्रेरी चैरीटेबल ट्रस्ट
सुतैहरी रोड, होशियारपुर
द्वारा अमूल्य भेंट
संस्थापक : परम सन्त परम दयाल पं. फकीर चन्द जी महाराज

FORM 1

(See Rule 8)

Place of Publication	Hoshiarpur
Date of Publication	10th of every month
Periodicity of publication	Monthly
Printer's Name	Dr. Paras Ram Aggarwal
Nationality	Indian
Address	Manavta Mandir, Hoshiarpur
Editor's Name	Dr. Paras Ram Aggarwal
Nationality	Indian
Address	Manavta Mandir, Sutehri Road, Hoshiarpur.
Name and address of individuals, who own the Manav Mandir or partners or shareholders, holding more than one percent of the TOTAL	Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

I, Dr. Paras Ram Aggarwal hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Dated : 10-[illegible]

Signature of Publisher

Printed and Published by : Dr. Paras Ram at Shiv Dev Rao Press, Manavta Mandir, Hoshiarpur. for the Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

मानवता मन्दिर में अगला मासिक सत्संग 14-7-91 को होगा।

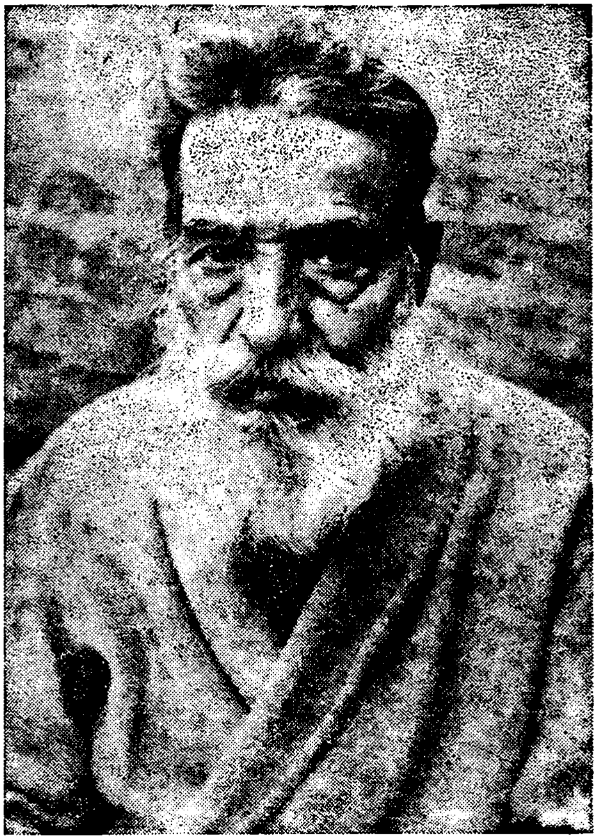

Param Sant Param Dayal
Pt. Faqir Chand Ji Maharaj

Param Sant Manav Dayal
Dr. I. C. Sharma Ji Maharaj

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

मासिक—

मानव मन्दिर

विश्व में मानव मात्र के सामाजिक, सांस्कृतिक
और आध्यात्मिक कल्याण और विकास की
सेवा में संलग्न मासिक पत्र।

BE MAN

मनुष्य बनो

सम्पादक :
डा० परस राम अग्रवाल

वर्ष 18	बुधवार, 10 जुलाई 1991	संख्या 3

सरल और साधारण उपदेश

हजूर दाता दयाल महर्षि शिवव्रत लाल जी महाराज

(1) यदि शीघ्र काम बनाना है, तो समय की क़दर करो और यदि यों ही हँसी-दिल्लगी मंजूर है और समय नष्ट करना है, तो समय की बेकदरी करो।

(2) काम बनाने वाले अपना काम सरलता से बना लेते हैं, जिनको काम नहीं बनाना होता, वह डाँवाड़ोल फिरते हैं। उनके हाथ कुछ भी नहीं आता।

(3) जप, तप, संयम, पूजा-पाठ चाहे जितना भी करो मतलब नहीं निकलेगा। मतलब तो केवल एक ही बात से निकलेगा। बहुत सी बातों के झमेले में जो कुछ समझा-बूझा है, वह भी मिट्टी में मिल जाता है।

(4) अनुभव की बातें तथा कसौटी पर परीक्षा किये हुए उपाय क्रियात्मक हैं। उन पर यदि अमल करो तो काम बन जायेगा। नहीं अमल करोगे तो धोखा खाओगे। आयु नष्ट हो जायेगी। डाँवाडोल फिरते रहोगे, परिणाम कुछ नहीं निकलेगा।

(5) लोग सत्संग में आते हैं। अहंकारवश वे सत्संग का सम्मान करने के बदले अपना ही मान कराना चाहते हैं उनके अहंकार की जड़ दृढ़ होती जाती है और

अहंकार उन्हें ठीक रास्ते पर नहीं आने देता। झगड़े की सारी जड़ अहंकार के ही अन्दर है। अहंकार छूटे तभी काम बनेगा।

(6) सुमिरन, ध्यान और भजन, इन तीनों को समझो। सुमिरन कहते हैं विचार करने को, ध्यान कहते हैं प्रकाश की दशा को और भजन कहते हैं शब्द सुनते हुए शब्द में लय हो जाने को। इन तीनों को समझो तो चौथा पद आप ही आप प्राप्त हो जायेगा। उसके प्राप्त होने में रुकावट नहीं होगी।

(7) विचार आया सुमिरन की जड़ दृढ़ हो गई। विचार फुरा, उसने रूप बनाने की दशा समाप्त कर ली। विचार का रूप देखा, वह ध्यान है। वचन सुना, वचन में लय हो गये, यह भजन है।

(8) विचार या सुमिरन करने वाला पहिले मूढ़ अवस्था में होता है। सुमिरन करने से धीरे-२ मूढ़ता जाती रहती है और मन चंचल हो जाता है। चंचल होते ही वह सुमिरन के हरएक अंग को सोचता, विचारता, निरखता और परखता है, यह ध्यान है। सुमिरन के तत्त्व को पकड़ने का नाम ही ध्यान है उसके ऊपर ध्यान का दर्जा है। जब वह सुमिरन में लय हो जाता है, वह भजन है। जब सुमिरन, ध्यान तथा भजन हो गया, गुरु की चेतावनी से अज्ञान जाता रहता है और ज्ञान की अवस्था आती है।

(9) मूढ़ता को छोड़कर चंचल बनो तथा चंचलपने को छोड़कर अज्ञानी बनो। अज्ञानी का अर्थ मूर्ख नहीं है। अज्ञान स्वयं ज्ञान की एक सूरत है। जब चित्त में एकाग्रता की अवस्था आने लगे और स्वयं क्रेन्द के मन कहीं नहीं जाये, कहीं नहीं भटके, किन्तु उसका होकर

रहे, तब उसे अज्ञान कहते हैं। जब तक अज्ञानी न बनोगे ज्ञान का अधिकार कैसे आयेगा ? अज्ञानी में एक बात की कमी रहती है, उसे अपने रूप का पता नहीं रहता। जब उसने मूढ़, चंचल और अज्ञानी-पन के दर्जे तय कर लिये तब गुरु की दया होती है और गुरुकृपा उसका काम आसानी से बना देती है। यह चौथी अवस्था है।

(10) सुषुप्ति बेसुधि की अवस्था है, जिसमें मूढ़ता है और मूढ़ता की जड़ है, क्योंकि हर वस्तु गुथी हुई बीज-रूप में रहती है, उसे छोड़कर व्यक्ति को चाहिए कि वह स्वप्नावस्था में आये। विचार फुरा, सोचा-समझा, उससे और नीचे उतरे, जाग्रत में आये। जाग उठे और उसी विचार या सुमिरन के सारे रंग आँखों के सामने आ गये। साक्षात्कार हो गया। यह जाग्रत अवस्था आपको इसलिये दी गई है, कि इसमें हर वस्तु की प्रतीक्षा करो। यह प्रत्यक्ष की सूरत न स्वप्न है, न सुषुप्ति।

(11) अफ़सोस इस बात का है कि इस जाग्रत अवस्था में भरम कर लोग इसीके दृश्यों में ही फँस जाते हैं और उसी ही के बन कर संसारी सम्बन्धों के जाल में फँस जाते हैं। सन्त कहते हैं कि चिन्ता की बात नहीं यदि कोई व्यक्ति बहिर्मुखी होने से संसार में फँस जाता है, तो उसे अन्तर्मुखी वृत्ति का साधन करना चाहिए। जाग्रत से स्वप्न में जाओ और स्वप्न से सुषुप्ति में। तीनों अवस्थाओं पर विचार करो। फिर आपको अन्दर और बाहर का भेद स्वयं मिलना शुरू हो जायेगा। अन्तर्मुखी साधन का उद्देश्य केवल इतना ही है कि आपका अनुभव बढ़ जाये। जो वस्तु पहिले

बीजरूपी थी उसमें अँखुआ आ गया और अँखुए से वृक्ष फल फूल की हालत ग्रहण कर ली। उसे देखा, समझा। जो अन्तर में था वही बाहर प्रकट हुआ। फिर उस प्रत्यक्ष से उठकर आँखों के स्थान में जाओ और सुषुप्ति में जाकर लय हो जाओ। इस साधन के बार-बार करने से समझ-बूझ बढ़ जायेगी। बाहर और भीतर के पर्दे दोनों ही उठते चले जायेंगे।

(12) मूढ़ता तमोगुण है, चंचलपना रजोगुण तथा इसका साक्षात्कार सतोगुण है। यह जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति की अवस्था है, क्योंकि यह समझने-बूझने में सहायक होती है। स्वप्न अवस्था रजोगुणी है, जिसमें सोच-समझ की शक्ति भरी हुई है। सुषुप्ति की तमोगुणी अवस्था मूढ़पना है केवल बीजरूपता है।

(13) अभ्यास का उद्देश्य यह नहीं है कि आदमी हर समय लय अवस्था में पड़ा रहे, अपितु अभ्यास का उद्देश्य तो यह है कि मनुष्य को जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति तीनों ही अवस्थाओं का ज्ञान हो जाय और ज्ञान होने के पश्चात् वह इन तीनों से ऊपर उठने का यत्न करे।

(14) जीव की जाग्रत अवस्था को ब्रह्म की जाग्रत अवस्था से मिला देना सहस्त्र-दल कँवल की दशा है। जीव की स्वप्नावस्था को ब्रह्म की स्वप्नावस्था से मिला देना, त्रिकुटी का ध्यान है। जीव की सुषुप्ति को ब्रह्म की सुषुप्ति की अवस्था से मिला देना सुन्न या शून्य की अवस्था है। जीव जिस तरह जाग कर जीव बनता है और वसु अर्थात् संसारी कहलाता है, उसी तरह ब्रह्म जाग कर विराट् कहलाता है। जीव जिस तरह स्वप्न देखता हुआ कल्पित व्यवहार पर आरूढ़ होता है और तेजोमय तेजस् और तेजमान् कहलाता है, उसी तरह

मानसिक रचना करता हुआ अन्तर्यामी कहलाता है। जीव जब गहरी नींद, अर्थात् सुषुप्ति में जाता है, बेसुध हो जाता है, अपने आप में लय हो जाता है, उस समय उसका नाम प्रज्ञाघन होता है, क्योंकि कुल अवस्थाएँ गुथी-गुथाई बीच की शक्ल में एक खास सिकुड़ी हुई दशा में आ जाती है। इसी कारण ही वह प्रज्ञाघन कहलाता है। ठीक इसी तरह, जब गहरी नींद में चला जाता है, वह अपने आप में लय होता हुआ हिरण्यगर्भ (सोने का अण्डा) कहलाता है। आशा है अब आपको जीव और ब्रह्म की समानता समझ में आ गई होगी। संशय तथा भ्रम जब मिट गये तो यह समझ में आ गया कि जो जीव है वह ही ब्रह्म है, अन्तर तो केवल कहने, सुनने और आकार का ही है।

(15) इस तरह जीव अपने को उदारहृदय और उदारदृष्टि वाला बनाता हुआ ब्रह्म की अवस्था में बदल देता है। कुल बात कल्पित ही तो है। तुम छोटे बनो तो छोटे, बड़े बनो तो बड़े। दोनों ही की जड़ तो ख्याल में ही है। इस प्रकार मनुष्य जीते-जी इसी शरीर में ही ब्रह्मदशा को प्राप्त कर लेता है। छोटाई को छोड़ कर बड़ा हो जाना, संकीर्ण दृष्टि को छोड़कर विस्तृत दृष्टि रखना, इसी ही का नाम ब्रह्मपना है। इसी तरह जीव अपने आपको ब्रह्म बना देता है।

(16) गुरु के सत्संग में आये, शब्द सुना। शब्द की सहायता से शब्द को पहिचाना। शब्द को सुनना जाग्रत है। शब्द को पहिचानना स्वप्न है और फिर गुरु के शब्द में लय हो जाना सुषुप्ति है। अभ्यास में जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति की अवस्थाओं ही का नाम सहस्र-दल कँवल, त्रिकुटी और शून्य है। जीव जब अपनी जाग्रत

स्वप्न और सुषुप्ति को ब्रह्म की जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति में बदल लेता है वह क्रमशः सहस्र-दल कँवल, त्रिकुटी और शून्य की पहुँची हुई आत्मा कहलाता है। यह अवस्था अभ्यास से आती है।

(17) जब इन अवस्थाओं पर ठहराव मिलने लगे, अनुभव हो जाय, तब अभ्यासी गुरु की कृपा से चौथे पद की ओर चलता है। चौथे पद का नाम सतलोक की दशा है। यह एक ऐसी हस्ती (अस्तित्व) है, जहाँ न जीव-पना रहता है न ब्रह्मपना। छोटाई, बड़ाई दोनों का भ्रम हमेशा के लिए मन से दूर हो जाता हैं। इसे ही ब्रह्म का चौथा पद कहा जाता है। इस अवस्था में आकर जीव जीते-जी सत के स्थान का वासी हो जाता है। फिर वह चाहे इस दुनिया में कैसे ढंग से रहे, इस अवस्था में, दुनिया न तो उसे सताती है, और न ही वह दुनिया की शिकायत करता है।

खुशी का जाम पिया, दिल में आ गई मस्ती।
नहीं है मौत का खतरा, कि मिट गई हस्ती॥
यही हस्ती हस्ती है, इसमें नहीं है नाम अज़ल।
न इसकी तह में बुलन्दी है, न है पस्ती॥
मिले जो मस्ती की हस्ती, तो हस्त हो जाये।
बगैर समझे की मस्ती को, समझो खरहस्ती॥

———

समझ की अन्तिम अवस्था

परमसन्त परम दयाल पण्डित फकीर चन्द जी महाराज

का

मानवता मन्दिर होशियारपुर में दिया गया सत्संग

26 मार्च 1978

साधो शब्द सभन से न्यारा, जानेगा कोई जाननहारा।
जोगी जती तपी संन्यासी, अंग लगावै छारा।
मूल मन्त्र सतगुरु दया बिन कैसे उतरे पारा॥
जोग यज्ञ व्रत नेम साधना, कर्म धर्म व्योपारा।
सो तो मुक्ति सभन से न्यारी, कस छूटे जम द्वारा॥
निगम नेति जाके गुन गावें, संकर जोग आधारा।
ब्रह्मा विष्णु जेहि ध्यान धरतु हैं, सो प्रभु अगम अपारा॥
लागा रहे चरण सतगुरु के चन्द चकोर की धारा।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो नष सिब शब्द हमारा॥

राधास्वामी !

आप लोगों ने यह शब्द सुना। कल रात को डा० जगजीत सिंह जो कभी पंजाब में फाईनान्स मन्त्री था मेरे मकान पर आया। उसके साथ एक अमेरिकन था। उसने मेरे साथ काफी देर तक आध्यात्मिकता के विषय में बात-चीत की। उसके मन में शान्ति नहीं थी। मैंने उससे पूछा

"क्या तुमने वीर्य को व्यर्थ में खोया है ?" वह बोला, "हाँ, बुरी तरह से। बारह वर्ष तक मैंने अपने वीर्य को व्यर्थ में खोया है। मैंने कहा, "मेरे प्यारे ब्रह्मचर्य के गिर जाने से किसीके मन को शान्ति नहीं मिलती। तुम्हें कैसे मिलती।"

सच्ची शान्ति की खोज में सभी भटक रहे हैं। शान्ति की प्राप्ति के लिए संसार नाम जपता है। कोई सतनाम जपता हैं तो कोई पंच नाम। कोई रारंग-रारंग जपता है और कोई और कोई और नाम जपता है। कबीर कहते हैं :-

साधो शब्द सभन से न्यारा, जानेगा कोई जाननहारा।

वह सबसे न्यारा शब्द क्या है ? सबसे न्यारा शब्द है ज्ञान तथा अनुभव।

सुरत शब्द दोऊ अनुभव रूपा।
तू तो पड़ा भरम के कूपा॥

मुझे विश्वास हो गया है कि यह संसार दुःख की खान है। यहाँ तो जन्म लेना ही महापाप है। सन्तान पैदा करना भी महादोष है। हम खुद तो यहाँ बुरी तरह से फँसे हुए हैं, सन्तान पैदा करके उसे भी फँसाते हैं, उसे भी दुःखी करते हैं। मेरे पास जितने भी लोग आते हैं, वे सब अपनी-२ इच्छाओं की पूर्ति कराने के लिए ही आते हैं, सारशब्द के लिए कोई नहीं आता, आध्यात्मिकता के लिए कोई नहीं आता। आम लोगों के लिए सन्तमत नहीं है। सन्तमत तो केवल उन ही लोगों के लिए है, जो असलियत को जानने के इच्छुक हैं और जिनको यह ज्ञान हो गया है कि यह संसार तो दुःखों की खान है, जो यह जानना चाहते हैं कि उनका असली घर कहाँ है। जब मैं अभ्यास करता हूँ मैं रंग-रूप को छोड़कर प्रकाश और शब्द में चला जाता हूँ। फिर मैं उस चीज़ की तलाश करता हूँ जो प्रकाश को देखती और शब्द को सुनती है। मेरी समझ में वही चीज़ सबसे न्यारी है।

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

साधो शब्द सभन से न्यारा, जानेगा कोई जाननहारा।

जब कभी मैं शब्द और प्रकाश से भी ऊपर चला जाता हूँ, तो क्या अनुभव करता हूँ ? अनुभव करता हूँ कि वहाँ न मैं है, न तू है, न राम है न कृष्ण है, न गुरु है न चेला है, न स्वामी है न सेवक है। वहाँ मेरी "मैं" समाप्त हो जाती है, एक तत्त्व रह जाता है। इसका नाम शायद मुक्ति है अंश का पूर्ण हो जाना है।

अनामी पुरुष में समा जाने का क्या अर्थ है ? यही न कि जीव को न उसके शरीर, न उसके प्रीतम के रूप-रंग का ख्याल ही न रहे और न ही गुरु या भगवान् की सुध रहे। कबीर साहिब कहते हैं :—

सखिया वा घर सबसे न्यारा।
जहाँ पूरन पुरुष हमारा ॥

वह आगे लिखते हैं :—

जहाँ पुरुष, तहवाँ कछु नाहीं, कहें कबीर हम जाना।
हमरी सैना जो कोई समझे, पावे पद निरवाना॥

और स्वामी जी कहते हैं :—

नहीं सतनाम न नामी अनामी।

अन्तिम अवस्था में तो न नाम है, न सतनाम है और न ही अनामी है।

मैं आख़िरी शब्द को क्या समझता हूँ :—

जानेगा कोई जाननहारा।
साधो शब्द समन से न्यारा॥

वह शब्द है कौन सा जो न शरीर, न मन और न ही आत्मा से जपा जाता है ? वह शब्द न्यारा है। जब उस शब्द न्यारे को पहिचान जाओगे तभी भवसागर से पार जाओगे। परन्तु यह सम्भव कब होगा ? यह सम्भव तब

होगा जब आप अपने मन को संसार से हटा लोगे। कबीर साहिब कहते हैं कि संसार के सभी काम मन से किये जाते हैं इसलिये यह सब मुक्ति के देने वाले, मुक्तिदाता नहीं हैं। तो प्रश्न उठता है कि फिर मुक्ति का दाता कौन है? यह वह अवस्था है, जहाँ हम ही नहीं रहते कोई ऐसे कहता है और कोई कहता है कि वह एक तत्त्व है दोनों का भाव एक है। मुझसे अभी भी मुक्तिपद में ठहरा नहीं जाता मुझे उसका मार्ग तो मिल गया है, वहाँ जाता भी हूँ मगर वहाँ सदा के लिए ठहर नहीं सकता। यह तो समझ में आ गया है कि यह वह अवस्था है जहाँ न "मैं" है न "तू"।

निगम नेति जाके गुन गावैं, संकर योग अधारा।
ब्रह्मा विष्णु जेहि ध्यान धरतु हैं, सो प्रभु अगम अपारा॥

वह प्रभु अगम अपार कैसे हुआ? प्रभु तो एक अवस्था है। कबीर साहिब तो लिख गये कि ब्रह्मा, विष्णु जिसका ध्यान करते हैं वह अगम अपार है। यदि कबीर यहाँ होते तो मैं उनसे पूछता ब्रह्मा किसका ध्यान करता है? तो मैं सोचता हूँ कि वह इसका उत्तर नहीं दे सकते। प्राय: वाणी को इस ढंग से बताया जाता है कि हम सीधे-सादे, भोले-भाले लोग उसमें उलझ जायें। मैं स्वयं भी वाणियों में उलझा हुआ था। अब मैं अच्छी तरह से समझता हूँ कि वह एक शक्ति है, जिसने संसार को बनाया है और मैं अपने आपको उस शक्ति के सुपुर्द करता हूं। परन्तु कभी-२ यह मन मुझे भी गिरा देता है।

लागा रहै चरन सतगुरु के, चन्द चकोर की धारा।
कहें कबीर सुनो भाई साधो, नष सिष शब्द हमारा॥

लोग कहते हैं कि सतगुरु के साथ लगे रहो और चन्द चकोर की तरह ध्यान करते रहो। मैं इसको नहीं मानता, क्योंकि लोग सद्गुरु को अपने से बाहर कोई अलग वस्तु

मानते हैं। सद्गुरु ब्रह्मरूप और पारब्रह्म है। वह प्रकाश है। तुम्हारे अन्दर भी प्रकाश है। उस प्रकाश को पकड़ो तब तुम अन्तर्मुखी बनोगे। बाहर का गुरु यदि वह सच्चा गुरु है तो वह तुम्हें ठीक रास्ते पर लगा देगा परन्तु बाद में तो तुम्हारा अपना ही विश्वास काम करता है।

मन्ने की गत कही न जाये।

सदा आशावादी रहो, कभी किसीके विषय में भी बुरा मत सोचो। तुम्हारा ख्याल ही तुम्हें जीवित रखता है और तुम्हें मार भी देता है इसलिये सदा शुभ तथा अच्छे विचार रखो।

शुभ तथा अच्छे विचार रखने के साथ-२ तथा मन को काबू करने के बाद, धीरे-२ संसार से विरक्ति, यानि कि संसार में कम से कम फँसने की कोशिश करो। क्योंकि संसारी इच्छाएँ तुम्हें नीचे की ओर घसीटती हैं। यह कुदरत का नियम है कि जो चीज़ भारी होती है, उसे ज़मीन की कशिश अपनी ओर खींचती है उसे कोई रोक नहीं सकता। यदि तुमने लाख अभ्यास किये हुए हैं, लाख कानों में अँगुलियाँ डालकर बैठने के प्रयत्न किये हुए हैं, किसी गुरु के पाँव धो-२ कर उसका पानी पिया हुआ है, लाख दान दिये हुए हैं, फिर भी तुम उस समय तक ऊपर नहीं जा सकोगे, जब तक तुम्हारा शरीर सांसारिक इच्छाओं के कारण भारी है। भारी चीज़ ऊपर कैसे जायेगी? वह तो नीचे ही आयेगी। चाहे तुम जोगी हो, जती हो, महात्मा हो, संन्यासी हो, यदि तुम्हारा मन तुम्हारे कब्ज़े में नहीं है, तुम्हारे मन में इच्छाएँ अभी भी उपस्थित हैं, तुम आवागमन के चक्कर से छूट नहीं सकते। नहीं छूट सकते।

मेरे जीवन का अन्त कैसा होगा मैं नहीं जानता? मेरे साथ क्या होगा यह भी नहीं जानता। जो मैंने पिछले जन्मों

तथा इस जन्म में कर्म (अच्छे या बुरे) दोनों किये हैं उनका फल भोगने में मैं प्रसन्न रहूंगा।

साधो शब्द सभन से न्यारा।

मैं सारी आयु सुरत-शब्द योग का अभ्यास करता रहा। तलवार की धार पर चला। क्या अब तक भी मुझे यह ज्ञान नहीं होना चाहिए कि सभीसे न्यारा वह शब्द क्या है? जब मुझे आप लोगों से यह पता चला कि मेरा रूप आपके अन्तर में प्रकट होता है और मैं जानता हूं कि मैं कहीं नहीं जाता, तो मैं शरीर, मन और प्रकाश से ऊपर चला जाता हूँ। बाकी क्या रह जाता है? केवल 'शब्द' उसमें मैं उस चीज़ की तलाश करता हूँ, जो शब्द को सुनती है। वहाँ एक और सुरत-शब्द का अनुभव होता है। यही है वही न्यारा शब्द। स्वामी जी ने कहा है :—

सुरतशब्द दोऊ अनुभव रूपा।
तू तो पड़ा भरम के कूपा॥

यहाँ आकर मुझे शान्ति मिलती है। मैं कबीर साहिब के साथ अपने अनुभव के आधार पर सहमत हूँ :—

जोगी जती संन्यासी अंग लगावें छारा।
मूल मन्त्र सतगुरु दाया बिन, कैसे उतरें पारा॥

पार कब जाओगे? जब अपने मन को संसार से हटा लोगे। आप लोग आये हैं। मैं आपको क्या कहूँ? अपना ही अनुभव बताता हूँ। ऐ मानव! जो कुछ तुझे मिलेगा वह तुम्हारी अपनी ही नीयत और अपने ही कर्म का फल है। अगर तू यह भी नहीं मानता तो यह मान ले कि जिसने यह संसार बनाया है वह किसीका लिहाज़ नहीं करता एक प्रकार से वह ज़ालिम है। कई बच्चों को जन्म से ही अन्धा पैदा कर देता है, कइयों को पोलियो की बीमारी लगा देता है, कइयों

की शक्लें भयानक-२ बना देता है। क्यों ? क्या बच्चे ने पैदा होते ही बुरे कर्म किये ? नहीं, इस जन्म में तो वह अभी पैदा ही हो रहा है। इसका मतलब है कि यह उनके पिछले जन्मों का हिसाब-किताब होता है। मालिक ने तो एक नियम बना दिया है कि जैसे कर्म करोगे वैसे ही फल पाओगे। वह नियम भंग नहीं करता इसलिये उसे निर्दयी कहा जाता है।

आप लोग आते हैं। मैं अपनी ज़िम्मेवारी को महसूस करता हूँ। मेरे पास दुःखी लोग आते हैं। मैं सोचता हूँ मैं इनके लिए क्या कर सकता हूँ। शुभभावना देता हूँ। जो लोग विश्वास करते हैं उनके काम हो जाते हैं।

मैंने आज तुम्हें सत्संग दे दिया। मैं चाहता हूँ कि आप सबकी मनोकामनाएँ पूरी हों और आपको शान्ति प्राप्त हो।

सबको राधास्वामी !

सत्संग परमसन्त हजूर मानव दयाल डा० ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज

ब्रह्म सिंह जी के घर मेरठ

16 - 10 - 88

सतगुरु परम दयाल री कोई कदर न जाने ॥
देह धरें जीव भार उठावें, काटें यम का जाल री ॥
जीव अनाड़ी जग झक मारें, दु:ख सुख संग बेहाल री ॥
दया मेहर निज वचन सुनावें, मेटें घट दु:ख साल री ।
छूटन की वह युक्ति बतावें, घट में चलावें चाल री ॥
दया मेहर से करनी करावें, कर दें मालामाल री ॥
घट के बैरी सभी नसावें, मारे काल कराल री ॥
निस दिन तेरी दया विचारें, जस माना संग बाल री ॥
अन्त समय जब तेरा आवे, आप हुए रखवाल री ।
घट तेरे में प्रगट करावें, अपना रूप विशाल री ॥
पकड़ चरन तू निजघर जावे, काल करम पामाल री ॥
राधास्वामी सतगुरु मोहि अस मेटें, हो गई मैं खुशहाल री ॥

राधास्वामी !

मेरी अपनी ही आत्मा के स्वरूप, साक्षात् सद्गुरुरूप सत्संगी भाइयो और बहनो ।

जैस कि ब्रह्म सिंह जी ने आपको बताया कि पिछले दो वर्ष से लगातार इनका अनुरोध था कि मेरठ में आकर मैं सत्संग दूं । यह मौज के आधीन होता है । मैं तो पाँच

मिनट आगे की बात भी नहीं सोचता। ब्रह्म सिंह जी की श्रद्धा तथा प्यार था कि ऐसा अवसर बना कि मैंने स्वयं इनको लिख दिया कि हम आ रहे हैं। मैंने आपको राधा-स्वामी कहकर सम्बोधित किया है। बहुत से लोगों को राधास्वामी के बारे में ग़लतफ़हमी है। लोग सोचते हैं कि राधास्वामी क्या है ? मैंने राधाधास्वामी क्यों कहा ? यह एक औपचारिकता हो गई है। आर्यसमाजी नमस्ते कहते हैं। सनातनी राधेश्याम या सीताराम कह देते हैं। हालाँकि सब जानते हैं कि सीताराम या राधेश्याम में कोई अन्तर नहीं है। नमस्ते का अर्थ भी यही है। नमः ते-तुभ्यम् नमः अर्थात् आपके अन्तस् में जो परमतत्त्व बैठा है, उसको मैं नमस्कार करता हूँ। यही राधेश्याम और सीताराम का अर्थ है। राधा जगत् है, विश्व है, सृष्टि है और जिसने सृष्टि को रचा, वह अर्द्धनारीश्वर है। उसीका नाम राम है, श्याम है। मतलब एक ही है लेकिन लोग इस बात पर ध्यान नहीं देते। नमस्ते करने वाला राधेश्याम नहीं कहता। वह तो कट्टरवादी हो गया। यह बात सत्य है कि जब भारत में हिन्दु धर्म का पतन हो रहा था, उस समय आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द ने हिन्दुओं को मुसलमान व ईसाई बनने से बचाया। लेकिन आगे चलकर आर्यसमाज में कट्टरता आ गई। किसी भी धर्म या सम्प्रदाय का आरम्भ ही एक व्यापक दृष्टि से होता है, लेकिन उस पर चलने वाले आगे चलकर उसको बहुत संकीर्ण बना देते हैं। स्वामी दयानन्द ने वेदों को माना। वेद हमारी आर्यसंस्कृति का सबसे ऊँचा स्रोत है। वेदों में दर्शन, विज्ञान, समाज शास्त्र, नीति, धर्म योग आदि सब कुछ है। वेद नाम है ज्ञान का—(1) बाहरी जगत् का ज्ञान (2) जगत् के पीछे जो शक्ति है, जहाँ से सारा जगत् है उसका ज्ञान। उसे स्वामी कहते हैं।

मैंने सत्संग के आरम्भ में आपको राधास्वामी कहा। राधास्वामी और कुछ नहीं है, प्रकृति और पुरुष, माया और ब्रह्म, सृष्टि और स्रष्टा, सत्ता और सत् हैं। जहाँ शक्ति है वहाँ शक्तिमान् है। शक्ति अपने आप में कुछ नहीं है। शक्ति शक्तिमान् की है। शक्तिमान् बिना शक्ति के कुछ नहीं है। वह शक्तिमान् ही नहीं, जिसमें शक्ति न हो। इसलिये हमारे यहाँ मालिक के स्वरूप की धारणाएँ हैं, उनमें शक्ति और शक्तिमान् दोनों शामिल हैं। जगत् दिखाई देता है उसमें गुप्त शब्द की गुप्त परमतत्त्व की एक विशेषता है। जगत् अर्थात् राधा पैदा होता है और फैल जाता है। जैसे एक हीरे की किरणें निकलती हैं और फिर उसी हीरे में सिमट जाती हैं। यह हीरे का स्वभाव है। उसी प्रकार परमतत्त्व सर्वाधार स्वामी का स्वभाव है, जिसके अन्दर अनन्त शक्ति, अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द है, वह प्रस्फुटित होता है। उस परमतत्त्व की एक धार से कोटि-२ ब्रह्माण्ड बन जाते हैं। यह धारा आधार से निकलती है। आधार बड़ा है और धार छोटी है। उस धारा के अन्दर जगत् के भूर् भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यम् बन जाते हैं। कोटि-२ ब्रह्माण्ड बन जाते हैं। ये ब्रह्माण्ड आधार से निकले हैं और उसी आधार की शक्ति से थोड़े समय के लिए स्थिर हैं। ब्रह्मा की शक्ति इनका सृजन करती है। विष्णु भगवान् इनका पोषण करते हैं और वही शक्ति इस फैलाव को समेट कर अपने अन्तस् में ले लेती है। विलीन करने वाली शक्ति को शिव कहते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव ये तीनों मालिक का स्वरूप हैं। ये मालिक की तीन शक्तियाँ हैं लेकिन मालिक इन तीनों शक्तियों से न्यारा है। इसलिये उसको स्वामी कहा है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव धारा है। राधा सुन्दर है। राधा मालिक का स्वभाव है। जगत् माया है

लेकिन नफ़रत के योग्य नहीं है। वाचक वेदान्ती कहते हैं कि मालिक निर्गुण है,यदि वह मालिक निर्गुण है तो यह सगुण जगत् कहाँ से आया ? यह बात सही है कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव अर्थात् विराट्, अव्याकृत और हिरणयगर्भ पहिले गुप्त रूप में मौजूद थे। इसलिये उसे निर्गुण कह दिया। जो चीज़ सूक्ष्म रूप में है, उसीको निर्गुण कहते हैं और जो स्थूल रूप में है उसीको सगुण कह देते हैं। निर्गुण से सगुण निकलता है और सगुण निर्गुण में विलीन हो जाता है। यह झगड़ा विशिष्टाद्वैत और द्वैत वेदान्त में है। अगर यह मान लिया जाये कि जो सगुण है, वह इसका अंश है, लेकिन सगुण जिसका अंश है, वह निर्गुण इसलिये भासता है, क्योंकि वह अपने स्वरूप के अन्दर नहीं है। गुप्त रूप अर्थात् सूक्ष्मरूप में मौजूद है। आपका शरीर ब्रह्मा है, मन विष्णु है और आत्मा शिव है। लेकिन आत्मा से परे जो विशुद्ध आत्मा है वह इन तीनों का आधार है। कहीं और जाने की ज़रूरत नहीं, अपने आप में देख लो कि जगत् क्या है ? मैंने आपको बताया कि स्वामी से जो धारा निकली, उस धारा ने जगत् बना दिया, लेकिन जगत् अपने आप में पूर्ण नहीं है। इसलिये जब किसी पुराण में किसी देवता को परम देवता माना जाता है तो उसके साथ शिव अर्द्धनारीश्वर है, तो राधास्वामी भी अर्द्धनारीश्वर है। आपको राधास्वामी नाम से घबराने की ज़रूरत नहीं है। क्योंकि राधास्वामी किसी फिरके का नाम नहीं है। आगरा में राधास्वामी स्थान ज़रूर है, मगर स्वामी जी महाराज ने राधास्वामी के असूलों को बताया है। राधास्वामी के असूलों को बनाने का मतलब यह नहीं कि राधास्वामी अलग फिरका हो गया, यदि फिरका हुआ तो ग़लत हुआ। मगर खूबी की बात यह है कि सनातन धर्म के असूल बताने वाले भगवान् कृष्ण का उत्तर प्रदेश में जन्म हुआ, भगवान् ने भी उत्तर प्रदेश में

जन्म लिया और राधास्वामी परमतत्त्व के अवतार स्वामी जी महाराज ने भी आगरा में जन्म लिया। स्वामी जी महाराज के व्यक्तित्व, उनकी शख्सियत का नाम राधास्वामी नहीं है। राधास्वामी नाम उसी परमतत्त्व का नाम है, जो आपके अन्दर मौजूद है, वह अगर एक मनुष्य के अन्दर मौजूद है। स्वामी जी महाराज ने राधास्वामी तत्त्व को अपने आप में व्यक्त करके यह बता दिया कि तुम्हारा असली रूप ही राधास्वामी रूप है। तुम्हारा असली रूप शरीर, मन और आत्मा नहीं है, वह तो ऊँची चीज़ है। यह राधास्वामी तत्त्व का मतलब है।

मैंने आपको राधास्वामी इसलिये कहा, क्योंकि राधास्वामी योग भी है। योग कहते हैं जोड़ को। आपके अन्दर जो आपकी अलग आत्मा है, उसके अन्दर परमतत्त्व का भी स्थान है। जब आपकी आत्मा परमतत्त्व से मिल जाती है तो राधास्वामी हालत हो जाती है। उसको कुछ लोग जीवन्मुक्ति कह देते हैं। अगर राधास्वामी सन्तमत की सबसे ऊँची कोई पुस्तक है, तो वह भगवद्गीता है। भगवद्गीता के 18 अध्यायों के अन्दर 18 सत्संग हैं। प्राचीन काल में इन सत्संगों को ऋषि मुनि अपने आश्रमों में देते थे। जब मनुष्य ब्रह्मज्ञान लेने के लिए ऋषियों के आश्रमों में जाता था और ऋषि या गुरु सत्संग देते थे, तो सत्संगों के तीन सोपान होते थे। (1) श्रवण, (2) मनन, (3) निदिध्यासन ऐसे ही राधास्वामी मत के तीन सोपान हैं सद्गुरु, सत्संग और सत्नाम। श्रवण का मतलब है सत्संग सुनना। ऋषि अपना अनुभव बताते थे कि परमतत्त्व मालिक क्या है? हम क्या हैं? हमारा उस मालिक से क्या सम्बन्ध है। इस जगत् का उस मालिक से क्या सम्बन्ध है। जब ऋषि अपना अनुभव बताते थे और सत्संग के अन्त में शिष्य वार्त्तालाप करते थे अर्थात् मनन करते थे, क्योंकि

गुरु मार्गदर्शक है। ऋषि उनके सभी संशयों को दूर कर देता था। अब तीसरा चरण था—निदिध्यासन जिसका अर्थ था कि स्वयं अनुभव करना अर्थात् अपने अन्तस् में देखना तथा अपने आपको जानना। सन्तमत वाले क्या कहते हैं :—

आप आपको आप पहचानो।
कहा और का नेक न मानो।।

यह कोई नई बात नहीं है। जब गुरु सब कुछ बता देता था, तब शिष्य को कहता था कि अब तुम स्वयं अनुभव करो।

एक शिष्य गुरु के पास ज्ञान लेने के लिए गया। गुरु ने शिष्य को बताया कि तुम जिसकी तलाश में आये हो, वह सर्वाधार है। सम्पूर्ण जगत् उसी मालिक से निकला है और सम्पूर्ण जगत् उसी मालिक में समाविष्ट हो जाता है। वह सर्वव्यापक है। कोई भी वस्तु उससे खाली नहीं है। वह सब जगह व्याप्त है। वह अजर-अमर अविनाशी है।

'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'

हर चीज़ उस मालिक से ओत-प्रोत है। लेकिन यह जगत् उस मालिक का एक अंशमात्र है। जगत् तो उसकी शक्ति है और वह शक्तिमान् है। जगत् राधा है और वह स्वामी है। वह अनेक ब्रह्माण्डों का चाँद है। वह सब कुछ है। नेति-२ कहने लगा इसलिये एक शब्द में आया है—

'क्या कह करूँ तुम्हारी, स्तुति अजर अमर अविनाशी'

वह मालिक न प्रकाश है, न आकाश है और यह भी नहीं है, वह भी नहीं है। इस जगत् के अन्दर कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जिसके आधार पर हम यह कह सकें कि वह यहाँ तक सीमित है। इसलिये जहाँ वह व्यापक है, वहाँ सबसे न्यारा भी है। उसके स्वरूप का कोई मुकाबला नहीं है। इसलिये कहते हैं कि वो ही एक सत्य है और बाकी

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAI
PURNADAYAL

जो कुछ भी है मिथ्या है। यह जगत् उस सर्वाधार का वितान है, फैलाव है। यह जगत् उसका मुकाबला नहीं कर सकता। अब गुरु ने सोचा कि शिष्य यह न समझ ले कि वह है ही नहीं, तो गुरु ने शिष्य को एक दम झटका दिया— 'तत्त्वमसि' 'वो तू है'।

आप दुनिया की हर चीज़ पर संशय कर सकते हो, अविश्वास कर सकते हो लेकिन अपने पर संशय नहीं कर सकते। अपनी आत्मा पर सन्देह नहीं कर सकते। वह असंदिग्ध है। वह स्वतः शुद्ध है। उसके लिए किसी प्रमाण की ज़रूरत नहीं,वह तो स्वतः प्रमाण है। अब प्रश्न उठता है कि वह परमतत्त्व शुद्ध, प्रामाणिक कैसे है ? आप मान लो कि आप संशयवादी हैं। आप सन्देह से चलते हैं। हम समझते हैं शरीर है। लेकिन शरीर तो समाप्त हो जाता है, क्योंकि मानवशरीर पाँच तत्त्व से बना है। जब पाँच तत्त्व अलग हो जाते हैं, तो शरीर का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। इसलिये आप शरीर पर सन्देह करते हैं, मन पर सन्देह करते हैं, ईश्वर पर सन्देह करते हैं। मान लीजिये कि आप सब पर सन्देह करते जा रहे हैं। सन्देह, सन्देह, सन्देह आदि-२ लेकिन एक बात पर सन्देह नहीं किया जा सकता कि मैं सन्देह कर रहा हूँ। मैं सन्देह करने वाला हूँ। यदि मैं नहीं हूँ, तो सन्देह करने वाला कहाँ से आया ? इसलिये 'मैं' अर्थात् आत्मा पर सन्देह नहीं कर सकते। सन्देह बताता है कि सन्देह करने वाले तुम हो। स्वप्न ही बताता है कि स्वप्न देखने वाले तुम हो। स्वप्न तो आता है और जाता है, लेकिन स्वप्न देखने वाला है, तभी तो स्वप्न दिखाई देता है। इसलिये आप अपने आप पर सन्देह नहीं कर सकते। ऋषि गुरु ने अपने शिष्य को कहा कि सब कुछ उसके अन्दर है, वह सब में व्याप्त है। 'तत्त्वमसि'। अरे 'तुम वो हो'। शिष्य के सारे सन्देह दूर कर दिये। पहिले सत्संग

दिया, फिर सद्गुरु बना, फिर संशय दूर किये अर्थात् मनन किया। यही तो सन्तमत है। मैं आपको ऋषियों वाली बात बता रहा हूँ। गुरु ने अपने शिष्य को कहा कि तुम्हें सब कुछ बता दिया, अब जाकर 12 साल स्वयं अनुभव करो अर्थात् निदिध्यासन सत्नाम। अर्थात् उसका नाम लो। शिष्य चला गया। 12 साल तक पहाड़ों में, जंगलों में, वादियों में समुद्र तट पर घूमा और 12 साल बाद गुरु के पास आया। नमस्कार करके बैठ गया। गुरु ने पूछा "तुम्हें कुछ अनुभव हुआ ?" शिष्य ने कहा "गुरुदेव ! आपने सच कहा था। वह सब जगह व्याप्त है। सब मनुष्यों में, पहाड़ों में, प्रकृति के सभी जीवों में वह मालिक दिखाई देता है। शिष्य आधा घण्टे तक अपना अनुभव बताता रहा। गुरु ने कहा "मुझे अफसोस है कि तुम्हें अभी तक बात समझ में नहीं आई। 12 साल और अनुभव करो।" शिष्य चला गया और 12 साल बाद वापिस आया और कहने लगा "मैं व्यर्थ में चक्कर लगाता रहा। सब जगह मालिक ही व्याप्त है। जगत् के पीछे भी वही है।" इस प्रकार उसने 5 मिनट में अपना अनुभव बता दिया। गुरु ने कहा, "अभी तुम्हें 12 साल और बाहर जाकर अनुभव करना है।" शिष्य चला गया और 12 साल बाद वापिस आया। गुरु के पास चुपचाप बैठ गया। न गुरु बोला न शिष्य बोला। अन्त में गुरु ने कहा, "अब तुम्हें बात समझ में आ गई।" शान्तोयम् आत्महा। जब उस अवस्था पर पहुँच जाता है, ..ब शान्त हो जाता है, बोलने की जरूरत नहीं रहती। इसी सच्चाई का नाम राधास्वामी हालत है और कुछ नहीं।

बूँद पानी में मिला, दरिया बना क्या जुस्तजू।
ज़ात में जब मिल गया, फिर क्यों करे वो गुफ्तगू॥

..त मौन हो जाता है।

लव खुले और बन्द हुए, यही राज़े ज़िन्दगानी है।

लव खुले और बन्द हुए में केवल एक ही शब्द है और वह है 'ॐ'। ॐ सारे जगत् के अन्दर व्याप्त है। यह जगत् है राधास्वामी। राधा वनी और फिर स्वामी में मिल गई। ॐ के अन्दर तीन शब्द आते हैं अ उ म। अ का अर्थ है ब्रह्मा अर्थात् सृष्टि, उ का अर्थ है विष्णु अर्थात् जगत् का पालन करने वाला, म का अर्थ है शिव अर्थात् सारा जगत् वापिस समाप्त हो गया। ब्रह्मा, विष्णु, शिव जिसके अन्दर आ जाते हैं, उस शान्त अवस्था का नाम राधास्वामी अवस्था है। मैं आपको राधास्वामी का अर्थ बताने की कोशिश कर रहा हूँ। राधास्वामी Teachings है, राधास्वामी हिदायत है, राधास्वामी असूल है। अब जो राधास्वामी के असूलों पर चलेगा, वह तो मुक्त होगा, जो नहीं चलेगा, वह मुक्त नहीं होगा। राधास्वामी के असूल सच्चे हैं। यह असूल बताते हैं कि वह मालिक भी पूर्ण है और तुम भी पूर्ण हो। कोई भेद-भाव नहीं है।

राधास्वामी सतगुरु, आये भेद दिया पूरा-२।
जो कोई भेदभाव को मेटे, सतगुरु का सेवक सूरा॥

यहाँ पर राधास्वामी सतगुरु का मतलब आगरा वाले स्वामी जी महाराज से नहीं है। यहाँ पर राधास्वामी सतगुरु का मतलब है कि परमतत्त्व मालिके कुल जीवों के उद्धार के लिए किसी भी रूप में इस जगत् के अन्दर आये सतगुरु परमतत्त्व का नाम है। यही बात मैंने आज के मंगलाचरण में कही है।

'गुरुदेव जगद् व्याप्तम्' गुरु परमतत्त्व मालिक का नाम है। वह सबसे बड़ा है। 'ब्रह्मा-विष्णु-शिवात्मकम्' उसका प्रकटीकरण सृष्टि में, पोषण में और पुनः विलीन हो जाने में है। 'गुरोः परतरं न हि किंचित्' ये तीन उसके

कार्य हैं। इन कार्यों को करने वाला जो चौथा पद है, गुरोः परतरम् उससे परे कोई और वस्तु नहीं है। 'तस्मै श्रीगुरुवे नमः' उसी गुरु को नमस्कार है। वही गुरु किसी भी रूप में आता है। उसके आने का मकसद है कि तुम्हारे बैठे हुए परमतत्त्व जगा दे, जिसे तुम भूल चुके हो। तुम इस ठोस जगत् मालिक के स्वरूप को ही जानने के लिए आये थे। मालिक का स्वरूप क्या है ? मालिक का स्वरूप है प्रेम। मालिक प्रेम है और कुछ नहीं है। प्रेम से ही यह जगत् ठहरा हुआ है। प्रेम के कारण ही हम उससे बिछुड़े हैं। हमारे अन्दर उस मालिक से मिलने की तड़प है। जब तक हम उस मालिक से नहीं मिलेंगे, तब तक हमें शान्ति नहीं आयेगी।

यह जगत् प्रेममय है। वह परमतत्त्व मालिक इस जगत् में मनुष्य के चोले में तुम्हें प्रेम सिखाने के लिए आता है। अपने गुरु को, जो भी तुम्हारा गुरु है, उसे परमतत्त्व मानो। वैसे तो आप भी परमतत्त्व हैं लेकिन आप भूले हुए हैं। दूसरे व्यक्ति से प्रेम क्यों होता है ? क्योंकि उसके अन्दर परमतत्त्व है। कौन-सा ऐसा व्यक्ति है, जिसके अन्दर परम-तत्त्व नहीं है। सबके अन्दर वह मालिक है, फिर नफ़रत किससे करूँ ! इसलिये तुम सद्गुरु को परमतत्त्व मानो। जब गुरु को मनुष्य मानकर तुम्हारे काम बन जाते हैं, तो जब गुरु को परमतत्त्व मानोगे तो तुम परमतत्त्व बन जाओगे। इसलिये बार-२ कहा जाता है कि सद्गुरु को पहिचानो। सद्गुरु क्या करता है ? यह आज के शब्द में हैं।

'सतगुरु परम दयाल री कोई कदर न जाने'

जब-२ भी परमतत्त्व मनुष्य के चोले में सद्गुरु बनकर आता है तो वह परमदया बहाता है। एक दया होती है और दूसरी परमदया होती है। दया माँगने पर मिलती है और

परमदया अपने आप बहती रहती है। लेकिन परमदया के अधिकारी नहीं। लोग कहते हैं कि सद्गुरु नहीं मिलता, मैं कहता हूँ कि सत्संगी नहीं मिलता।

फैज़ का दर है खुला वह बन्द नहीं हरगिज़।
शर्त ये है कि कोई माँगने सायल आये ॥

कोई लेने वाला आये, अधिकारी आये। लेकिन सद्गुरु की कोई कदर नहीं जानता।

सतगुरु परम दयाल री कोई कदर न जाने।

यहाँ पर कदर का मतलब है कि सद्गुरु से जो कुछ लेना चाहिए, वह नहीं लेते। अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए आते हैं। सद्गुरु आपको ऐसी नायाब चीज़ देना चाहता है जिसको पाने के बाद में और किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं रहती। तुम स्वयं परमतत्त्व बन जाओगे और माँगने वाले नहीं, बल्कि देने वाले बन जाओगे। तुम उसी नायाब चीज़ की खातिर सत्संग में आओ। असली देने वाला तो परमतत्त्व है। तुम स्वयं परमतत्त्व बन जाओगे और सब कुछ अपने आपको दोगे।

एक बार बादशाह अकबर जंगल में भटक गया। रात हो गई थी, भूखा था। एक ग़रीब किसान के झोंपड़े में पहुँच गया। किसान ने अकबर को खाना खिलाया, पानी पिलाया और रातभर अपने यहाँ रखा। किसान यह नहीं जानता था कि यह बादशाह है। प्रातःकाल जब अकबर चलने लगा, तो किसान से कहा "मेरा नाम अकबर है और मैं देहली में रहता हूँ। जब भी तुम्हारे ऊपर मुसीबत आये, मेरे पास आ जाना। मैं तुम्हारी हर ज़रूरत पूरी कर दूंगा। किसान समझा नहीं कि यह बादशाह है। कुछ साल के बाद किसान के गाँव में अकाल पड़ गया। लोग भूखे मर रहे थे किसान ने सोचा कि अकबर ने कहा था कि जब

ज़रूरत पड़े, मेरे पास दिल्ली आ जाना। यह सोचकर किसान अकबर से मिलने दिल्ली आया। जब किसान दिल्ली पहुँचा, तो अकबर बादशाह की सवारी निकल रही थी। अकबर हाथी पर बैठा था। जब किसान ने अकबर को देखा, तो ओ अकबरिया, ओ अकबरिया कहकर चिल्लाने लगा। पहरेदारों ने पकड़ कर हटा दिया। लेकिन अकबर ने देख लिया और कहा, 'इसे मेरे पास ले आओ।' अकबर ने किसान को अपने महल में रखा। किसान को खूब अच्छा खाना खिलाया, अच्छे कपड़े दिये। इस सुख के अन्दर किसान भूल गया कि वह अकबर के पास क्यों आया है? तीन-चार दिन के बाद उसे ध्यान आया कि वह तो गाँव वालों के लिए मदद माँगने आया है। प्रातःकाल किसान उठा और तैयार होकर अकबर से मिलने गया। अकबर उस समय नमाज़ पढ़ रहे थे। जब अकबर नमाज़ पढ़ चुका तो किसान को बुलाया। किसान अन्दर गया और अकबर का पलंग-बिस्तर देखकर कहने लगा,

"वाह रे अकबरा तेरे ठाठ,
नीचे बिस्तर ऊपर खाट।"

अकबर ने हँसकर कहा, "बता भई तू मेरे पास कैसे आया?" किसान ने कहा "पहिले तू बता कि ऊपर हाथ उठाकर क्या कर रहा था?" अकबर ने कहा, "मैं खुदा से दुआ माँग रहा था।" किसान ने कहा, "मैं तेरे से अब कुछ नहीं माँगता, तू तो खुद ही मँगता है। मैं उससे माँगूंगा जिससे तू माँग रहा था।" यह कहकर किसान अपने गाँव वापिस आ गया।

सद्गुरु परम दयाल है, वह आपको अपने जैसा बना देना चाहता है। लेकिन सद्गुरु आपको अपने जैसा कब बनायेगा जब तुम उसे परमतत्त्व मानकर प्यार करोगे।

परम दयाल जी महाराज का रूप प्रकट होता था, वह कहते थे कि मैं नहीं होता। यह सच्चाई है जो मैं आपको बता रहा हूँ। तुम लोग धोखे में पड़े हो। कोई भी देवता नहीं आता। तुम्हारी श्रद्धा व विश्वास के अनुसार ब्रह्माण्डी मन से रूप बनकर आ जाता है। वह रूप असली नहीं होता। तुम मेरे असली रूप को नहीं देखते। एक व्यक्ति ने मुझसे कहा, "महाराज! बन्दूक चल रही थी आपने आकर मुझे बचा लिया।" लेकिन मैं तो गया नहीं। तुम्हारी श्रद्धा और विश्वास ने तुम्हारे अन्दर विष्णुतत्त्व को जगा दिया और रूप प्रकट हो गया। मेरा रूप प्रकट हुआ, इसका मुझे पता नहीं होता। अब सोचो यदि तुम मुझे परमतत्त्व मानोगे, तो तुम स्वयं भी परमतत्त्व हो जाओगे।

देह धरें जीव भार उठावें, काटें यम का जाल री ॥

अरे जीव के अन्दर भार नहीं है। जीव तो परमतत्त्व का अंश है। तुम खुद परमतत्त्व हो। तुमने शरीर में आकर के अपने शरीर से मोह किया, दूसरे के शरीर से मोह किया। इस मोह के कारण तुम भूल गये कि तुम कौन हो। 'काटें यम का जाल री'। यम का जाल क्या है? यम का जाल हम खुद बनाते हैं। कोई बाहर से यम नहीं आता। यम के जाल का मतलब है कि हम अपनी ज़रूरतों को बढ़ाते ही जाते हैं और हमारे लिए यम का जाल बन जाती हैं। हम इस जगत् में विशुद्ध आत्मा बनकर आये थे। जब बच्चा पैदा होता है, उस समय, आत्मा के ऊपर किसी भी प्रकार का भार नहीं होता है। जब बच्चा बड़ा हो जाता और उसकी इच्छाएं पूरी नहीं होती हैं, तो वह मन में रह जाती हैं। मरते समय उन इच्छाओं के कारण व्यक्ति ऊपर नहीं जा पाता नीचे ही रह जाता है। यही इच्छाएं हमारे लिए भार बन जाती हैं। अगर हम अपनी ज़रूरतों

को बढ़ायें नहीं, तो यह झंझट न हो। जिनके पास बहुत अधिक पैसा है, उनको रात को नींद नहीं आती। अब बताओ कि यम का जाल हुआ या नहीं।

जीव अनाड़ी जग झक मारें, दुःख सुख संग बेहाल री।

अन्तस् में सब लोग यही चाहते हैं कि पैसा आ जाये, अधिक से अधिक आराम व सुख मिले। पैसा भी आ जाता है, आराम भी मिल जाता है लेकिन इस प्रकार की इच्छाओं का कभी अन्त नहीं होता।

रेगिस्तान में एक ऊँट पर सवार जा रहा था। बड़ी तेज़ धूप थी। आँधी आई। ऊँट तो ज़मीन खोदकर ज़मीन के अन्दर चला गया, मगर सवार बैठा रहा। कुछ समय बाद सवार उठा और चल दिया। चलते-२ गर्मी के कारण प्यास लगी। थोड़ी देर में सवार को सामने पानी दिखाई दिया। सवार ने ऊँटनी से कहा कि जल्दी चल हम मंज़िल के नज़दीक आ गये हैं। ऊँटनी तेज़ चलने लगी। चलते-२ दो घण्टे हो गये, लेकिन पानी का स्रोत न आया। सवार पानी की आशा में चलता ही गया। अन्त में ऊँटनी गिरी और उसकी टाँग टूट गई, सवार को भी चोट लगी। सवार ने जब ऊँटनी को उठाया तो वह मर गई। अब सवार पैदल चलने लगा, जितना चलता था, उतनी ही मंज़िल दूर दिखाई देती थी। सवार बहुत दुःखी हुआ और अन्त में मर गया। सवार कौन था? सवार था आप और हम। जो मंज़िल दिखाई देती थी, उसका मतलब है कि पैसा आ जाये, बेटा हो जाये, पोता हो जाये मगर इच्छाओं की पूर्ति कभी नहीं होती। मंज़िल जो दूर-२ दिखाई देती थी, यही मृगतृष्णा है। इसीलिये दाता दयाल जी महाराज ने कहा है "जीव अनाड़ी जग झक मारें"। मनुष्य इधर-उधर भटकता रहता है। सबसे खतरनाक बात यह है कि आज-

कल के गुरु लोग धोखा दे रहे हैं। यह लोग सच्ची बात नहीं बताते। एक जाल से निकालकर दूसरे जाल में आपको फँसा देते हैं। लेकिन जो सद्गुरु परम दयाल है वह आपको किसी जाल में नहीं फँसाता, बल्कि आसान रास्ता बताता है।

दया मेहर निज वचन सुनावें, मेटें घट दुःख साल री।

सद्गुरु परम दयाल क्यों है? क्योंकि आपको सच्चाई बताता है कि आप किसीको अपना इष्ट बना लो और उसे परमतत्त्व मानकर प्यार करो और उसे सब कुछ दे दो, तब तुम्हें स्वयं ही ऐसा रास्ता मिल जायेगा कि तुम्हारी सभी मंज़िलें कट जायेंगी। यह जितने भी लोक हैं जैसे ब्रह्म लोक, विष्णु लोक और शिव लोक सब जगत् के अन्दर हैं। जगत् का असली मालिक दयाल है, जो इन तीनों से न्यारा है। जब तुम उससे प्यार करोगे, तो वह तुम्हें बतायेगा कि अन्दर बैठे हुए परमतत्त्व से तुम्हारा मिलान कैसे होगा? कैसे तुम्हें शान्ति मिलेगी? लेकिन लोग इस ज्ञान के लिए सद्गुरु के पास नहीं आते इसीलिये कहा गया है 'कोई कदर न जाने।'

"छूटन की वह युक्ति बतावें, घट में चलावें चाल री।"

छूटन की युक्ति का मतलब है आज़ाद होने की विधि। तुम अपने आप में आज़ाद हो। तुम्हारा असली तत्त्व न शरीर है, न मन है, न आत्मा है। इन सब बन्धनों से छूटने के बाद में, जब तुम उस अवस्था पर पहुँचोगे, तो तुम्हें पता लगेगा कि छूटने की विधि क्या है? कर्मकाण्डी ब्राह्मण तन्त्र-मन्त्र के लिए कहते हैं। अच्छा तान्त्रिक आपको सिद्धि-शक्ति भी दिखा सकता है। लेकिन बन्धनों से तो नहीं छूटोगे। यदि तुम पैसा दान करते हो, तो तुम्हें अगला जन्म धनाढ्य परिवार में मिल जायेगा। लेकिन यह छूटने की विधि तो नहीं है। जगत् में रहते हुए, आनन्द भोगते

हुए, उससे अलग कैसे रहें? जगत् के आनन्द में आसक्ति न हो। संन्यास की विधि छूटने की विधि नहीं है। सन्तमत में छूटने की विधि सबसे आसान है और वो है 'सहज समाधि'। सुरत-शब्द योग सहज रास्ता है। इस पर चलने के लिए कहीं आने-जाने की ज़रूरत नहीं है। केवल आपके अन्दर जो परमतत्त्व है, उससे मिलना है। उसको मिलने के लिए तीन चीज़ों की ज़रूरत है—सत्संग, सद्गुरु और सत्नाम। सद्गुरु सच्चा होना चाहिए, और सत्संग इसलिये न देता हो कि पैसा आयेगा और डेरा बन जायेगा, बल्कि अपने सत्संग में सच्चाई बताये। उसे किसी किस्म का लालच न हो। सद्गुरु तो अपने अनुभव को बाँटने के लिए आता है। वह असलियत को पा चुका है इसलिये वह चाहता है कि दूसरों को भी लाभ पहुँचे। सद्गुरु की पहिचान क्या है?

गुरु वही जो शब्द सनेही, शब्द बिना और नहीं सेई।

सद्गुरु की पहिचान है कि वह शब्द में रहता है। शब्द क्या है? पाँच तत्त्व हैं, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश। पृथ्वी जल में रहती है, जल अग्नि में रहता है, वायु आकाश में रहती है, आकाश मुहितेकुल है। आकाश का गुण है शब्द। पृथ्वी का गुण है गन्ध। जल का गुण है रस और अग्नि का गुण है रूप देखना। हवा का गुण है छूना। जब आकाश एक है और बाकी सब चीज़ें उसके अन्दर मिली हुई हैं, 'गुरु वही जो शब्द सनेही' अर्थात् जो एक में रहता है। वह जगत् के अन्दर अनेकत्व को देखता हुआ भी एक में रहता है। ऐसे गुरु की जब वाणी को सुनोगे, तो तुम्हें ऐसा लगेगा जैसे तुम ऊपर उठ रहे हो। यह है शब्द सनेही। यदि ऐसा गुरु आपको मिल जाये तो उसके पास बैठो, उसके सत्संग को सुनो, सुनकर समझो

और जो बात तुम्हारे काम की हो, उसे अपने जीवन में उतार लो। जब तुम ऐसा करोगे, तो निश्चित रूप से गुरु जैसे ही बन जाओगे।

दर्शन करे पुनि वचन सुने, सुन-२ कर मन में गुने।
गुन-२ कर काढ़ ले सारा, सार काढ़ तिस करे अहारा।
कर अहार पुष्ट हुआ भाई, जग भव भय सब गया गँवाई।

सत्संग में दर्शन करे अर्थात् आँखों से लगातार देखता रहे। लेकिन दर्शन किसका करे, शरीर का? नहीं, दर्शन के अन्दर जो द्रष्टा बैठा हुआ है, उसको परमतत्त्व मानकर दर्शन करे। फिर उसके वचनों को सुने। गुरु के शब्दों के अन्दर वह शक्ति होती है, वह सच्चाई होती है, वह प्रेम होता है, जो तुम्हें प्रेममय बना देता है। 'सुन-२ कर मन में गुने' ध्यान से सुने। अक्सर सत्संग में क्या होता है? लोग बैठे होते हैं, ध्यान कहीं और होता है। कान खुले होते हैं लेकिन सुनते नहीं हैं। इसलिये सद्गुरु के वचनों को ध्यान से सुने और सुनकर ग्रहण करे। 'गुन-२ कर काढ़ ले सारा' आप अपना जीवन प्रेममय बना लो। हरएक के अन्दर परमतत्त्व को देखो। 'काढ़ सार तिस करे अहारा'। अमल करे। जब अमल करेगा, तब देखेगा कि मैं तो दूसरे से शरीर के कारण नफ़रत करता था, लेकिन वह शरीर थोड़े ही हैं। मेरे विचार मन के कारण दूसरे से नहीं मिलते थे, लेकिन वह मन नहीं है। वह तो परमतत्त्व दयाल का स्वरूप है, जो प्रेम का स्रोत है और जो सबके अन्दर है। अगर यह बात समझ में आ जाये, तो इन्सान किसीसे नफ़रत नहीं करेगा बैर नहीं करेगा। यदि कोई मेरे शरीर को नुकसान पहुँचायेगा, लेकिन मैं शरीर तो नहीं हूँ। मेरे मन को दुःख देगा, लेकिन मैं मन तो नहीं हूँ अरे मैं तो विशुद्ध ज़ातेपाक परमतत्त्व हूँ। प्रेम का स्रोत हूँ। मुझे डर किसका? सत्संग

के अन्दर अभयदान मिल जाता है। सत्संग को बार-२ सुनने की आवश्यकता है। 'जग भव भय सब गया गँवाई'। आदमी किसीसे नहीं डरेगा। मौत तो है ही नहीं। सत्संग से उसको ज्ञान मिलता है।

'छूटन की वह युक्ति बतावें'।

युक्ति क्या है? सद्गुरु को परमतत्त्व मानो। उसका सत्संग सुनो। सद्गुरु से अपने संशयों को दूर कराओ। संशय दूर करने के बाद सद्गुरु आपको नामदान देगा। नाम क्या है? नाम मालिक का नाम है, जिसको जपना है। अब नाम दो प्रकार के होते हैं :—

(1) वर्णात्मक नाम (2) धुनात्मक नाम।

वर्णात्मक नाम वह होता है जिसका वर्णन किया जाता है। जैसे ताजमहल है। जब उसका वर्णन करेंगे, तो बतायेंगे कि आगरा में जमुना के किनारे ताजमहल स्थित है। उसकी चार मीनारें हैं। यह संगमरमर का बना है आदि-२। दूसरा होता है धुनात्मक नाम। मालिक के कुछ नाम ऐसे हैं, जो धुनात्मक हैं जैसे 'ॐ'। यह शब्द सारे जगत् में गुञ्जायमान हो रहा है। ॐ कहने से सारे शरीर में समता आ जाती है। गीता में लिखा है कि भगवान् कृष्ण ने अर्जुन से कहा, "अर्जुन ॐ का आन्तरिक जाप करो। ॐ किसी का नाम नहीं है। ॐ के अन्दर ब्रह्मा, विष्णु, शिव मौजूद हैं।

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
मोक्षदं कामदं चैव ओंकाराय नमो नमः॥

ब्रह्मा, विष्णु और शिव। ॐ के ऊपर जो बिन्दु लगी है, वह चौथा पद है। यही चौथा पद असली मालिक है। इस 'बिन्दुसंयुक्त' को सारे योगी ध्याते हैं। यह नाम ऐसा धुनात्मक नाम है, जिसके जपने से आपके दुनियावी काम

भी बन जायेंगे और आप चौथे पद पर भी पहुँच जायेंगे। मालिक का जो ॐ नाम है, वह दूसरे नामों से ऊँचा है। हमारे अन्दर शब्द गुंजायमान है। सन्तमत वाले कहते हैं कि ॐ से भी ऊपर सोहम् शब्द है। यह परमपुरुष और प्रकृति का नाम है। सोहम् का अर्थ है 'मैं वो हूँ'। सोहम् धुनात्मक शब्द है। इसे मनुष्य ने नहीं बनाया। आपका हर साँस सोहम् कह रहा है। आप किसी सम्प्रदाय से क्यों न सम्बन्ध रखते हों यदि आप आँख बन्द करके मन में सोहम् का अजपाजाप करेंगे, तो आप सबका भटकना बन्द हो जायेगा और आपका सीधा सम्बन्ध परमतत्त्व से हो जायेगा। लेकिन इससे भी आगे का नाम आपको सच्चा सद्‌गुरु बतायेगा। यह नाम भी धुनात्मक होगा। इस नाम से आप ऊँची से ऊँची हालत में पहुँच जाओगे। अब गुरु ने आपको नाम भी बता दिया। नाम बताने के बाद में गुरु कहेगा कि अब ध्यान लगाओ। ज़ुबान बन्द, कान और आँख बन्द करो। साथ में नाम का सुमिरन करो। दोनों भोंहों के बीच में आपको प्रकाश दिखाई देगा। सारे जगत् के दर्जे दिखाई देंगे। कान बन्द करने पर घण्टे की ध्वनि आयेगी। बन्सी की धुन आयेगी। अब प्रश्न है ध्यान किसका लगायें? अरे ध्यान उसी सद्‌गुरु के चेहरे पर लगायें जिसने आपको नाम दिया है। उसे ही कुछ समय के लिए नामी मानो और उसके चेहरे पर ध्यान लगाओ।

छूटन की वह युक्ति बतावें, घट में चलावें चाल री।

अब सद्‌गुरु आपको यह नहीं कहेगा कि आप हर समय समाधि ध्यान में बैठे रहो। बल्कि आपको बतायेगा कि तुम जो भी काम कर रहे हो उसीके अन्दर अपने मन को लगाओ, काम के अन्दर ही तुम्हें मालिक के दर्शन हो जायेंगे। सब व्यक्तियों के लिए एक ही रास्ता नहीं है। हर

व्यक्ति को उसकी पृष्ठभूमि के मुताबिक, संस्कारों के मुताबिक नाम दिया जाता है। नाम को देने का मतलब है कि तुम्हारा मन एक जगह टिक जाये। यह इतना सहज तरीका है कि आपको कहीं बाहर जाने की ज़रूरत नहीं। इसीलिये इस मार्ग को बहुत आसान तथा जल्दी पहुँचाने वाला रास्ता कहते हैं।

दया मेहर से करनी करावें, कर दें मालामाल री।

गुरु आपको संन्यासी कपड़े पहनने के लिए नहीं कहेगा। न तुम्हें घर छोड़ने की आवश्यकता है। न भीख माँगने की आवश्यकता है। तुम्हारे अपने घर में रहते हुए, अपने माहौल में ही तुम्हें परमतत्त्व के दर्शन हो जायेंगे। सद्गुरु तुम्हारे काम को, तुम्हारे कर्त्तव्य को ऐसे सहज तरीके से करायेगा कि उसीके अन्दर जब तुम निपुण हो जाओगे तो तुम्हारा मन स्वयं टिक जायेगा। यदि तुम गुरु का कहना मानोगे, तो जल्दी ही अपनी मंज़िल पर पहुँच जाओगे।

घट के बैरी सभी नसावें, मारें काल कराल री।

घट के बैरी क्या हैं? घट के बैरी हैं—काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार। इन पाँचों को मारना नहीं है। इसीलिये दाता दयाल ने नसावें कहा है। हमारे यहाँ एक कहावत है कि मारने से डराना अच्छा है। यदि तुम्हारे अन्दर काम नहीं है, तो तुम नपुँसक हुए। काम का अर्थ है—कामना। काम शक्ति है, लेकिन उस काम का रूप बदल दिया जाता है। तुम्हारा काम सद्गुरु के प्रेम में बदल जायेगा, जिससे काम, काम नहीं रहेगा। काम तुम्हारा रास्ता नहीं रोकेगा। तुम्हारा क्रोध, क्रोध नहीं रहेगा। तुम अपने आपसे क्रोध करोगे कि मैं मालिक से अधिक से अधिक प्यार क्यों नहीं कर रहा। लोभ इस बात का होगा कि अधिक से अधिक

मालिक के पास बैठूँ। मोह जब प्रेम में बदल जाता है तो मोह नहीं रहता। मोह तो राग है। लेकिन मालिक के साथ जो प्रेम है, वह अनुराग है। राग का मतलब है कि हम किसीको अपना समझते हैं, लेकिन जब उससे अलग होते हैं, तो दु:ख होता है। अनुराग का मतलब है कि प्रत्येक मनुष्य के अन्दर बैठे हुए परमतत्त्व अविनाशी को प्यार करना। ज्ञान के बाद जो अनु आने वाला राग है वह अनुराग है। मोह अनुराग में बदल जाता है। अहंकार समर्पित हो जाने से समाप्त हो जाता है। जब तुम्हारे अन्दर अहंकार नहीं रहेगा, तब तुम्हारे अन्दर मालिक आ जायेगा। पाँव छूने की प्रथा क्या है? आप झुकते हो इसलिये नहीं कि गुरु बड़ा है और आप छोटे हो। झुकने का मतलब है कि तुम्हारे और मालिक के बीच जो पर्दा पड़ा हुआ है, वह हट जाता है। यह पर्दा 'मैं' का है। उस मालिक को तुम क्या दे सकते हो? यदि तुम दुनिया की सारी सम्पत्ति मालिक को दे दो, लेकिन यह सम्पत्ति तो उस मालिक की एक बूँद मात्र है। तुम्हारी किसी चीज़ की उसको ज़रूरत नहीं है। तुम उसको वह चीज दो जो तुम्हारी अपनी बनाई हुई है। ऐसी हमारी क्या चीज़ है? वह है हमारी अपनी 'मैं'। जब 'मैं उसको सुपुर्द कर देता है और कहता है कि मालिक मेरी 'मैं' अब नहीं है। जब 'मैं' नहीं रहेगी तो मालिक तो जानता है कि इस बेचारे ने पहिले पैसा दिया, अपने परिवार से मोह हटा लिया और रात-दिन मेरे ध्यान में लगा हुआ है। अब इसने 'मैं' को भी हटा दिया। इसकी 'मैं' नहीं रहेगी तो दुनिया की 'मैं' इसे कुचल डालेगी। इसलिये मालिक तुम्हारी 'मैं' बन जाता है। फिर सभी काम मौज करती है।

निसदिन तेरी दया विचारें, जस माता संग बाल री।
अन्त समय जब तेरा आवे, आप हुए रखवाल री॥

आप अपने इष्ट से प्यार करते हो। वह तो आया ही इसलिये है कि आप उसे प्यार करो। आप क्या समझते हो कि आप ही उसे प्यार करते हो? अरे वह भी आपसे प्यार करता है। सद्गुरु का प्यार माँ के प्यार की तरह निःस्वार्थ होता है। तुम एक कदम चलते हो, वह हज़ार कदम चल-कर आता है। 'अन्त समय जब तेरा आवे'। अब यह बात समझने की है। गुरुइज़्म में जो ठगइज़्म फैला हुआ है, वह ग़लत है। गुरु लोग कहते हैं कि तुम हमसे नाम ले लो। मैं तुम्हें अन्त समय में बचाने के लिए आऊंगा। अब गुरु का रूप तो प्रकट होता है। इसमें कोई गुरु की बड़ाई नहीं है। परम दयाल जी महाराज का एक पुराना शिष्य है के० एल० जैन। उसने मुझे खत लिखा "महाराज! मैं हरिद्वार गया। मैंने सोचा कि हरि की पौड़ी पर पाँच सौ रुपया दान करूंगा लेकिन आपकी आवाज़ आई कि तुम पाँच सौ रुपये मानवता मन्दिर में भेज दो। जहाँ जाना होगा, चला जायेगा। मैंने 500 रुपये मानवता मन्दिर को भेज दिये हैं। मुझे परम दयाल जी में अगाध विश्वास था। जब मैं मुसीबत में होता था, तो वह मेरे साथ होते थे। अब वह चले गये, तो आप मेरे साथ रहते हैं।" अब मुझे तो पता नहीं कि वह मेरे साथ जा रहा है। वह अपनी कमाई में से एक प्रतिशत मन्दिर को भेजता है और लिखता है कि आप मेरे अंग-संग होते हैं। यह उसका ख्याल तथा प्रेम है। वह मेरे रूप को बना लेता होगा, मुझे तो पता नहीं। अब जो गुरु कहते हैं कि अन्त समय में बचाने के लिए गुरु आता है, मेरी समझ से यह ग़लत है। अरे अन्त समय में गुरु का दिया हुआ ज्ञान, उसकी बताई हुई सच्चाई याद आयेगी

और तुम ऊपर चले जाओगे। यदि शब्द प्रकाश के अभ्यासी हो, तो शब्द प्रकाश भी आयेगा। होशियारपुर में एक उम्ररसीदा महिला है। उसका पति परम दयाल जी महाराज के पास आता था। बाद में मेरे पास भी आता था। उस औरत ने मुझे बताया कि जब उसका पति मरा, तो उसकी रूह आई। रूह ने बताया कि जब वह मर रहा था, तो मानव दयाल जी हाथी लेकर आये हैं और मुझे ऊपर ले जा रहे हैं। अब बताओ में महावत थोड़े ही हूँ। यह बात सुनकर मैं समाधि में बैठा और विचार किया कि इसका क्या मतलब है? मुझे उत्तर मिला कि मैं नहीं गया। क्योंकि वह मेरे सत्संग में आता था। हाथी गणेश का प्रतीक है और गणेश ज्ञान का चिन्ह है। सत्संग में जो ज्ञान उसे मिला, हाथी बनकर आया और उसे ऊपर ले गया। यह सच्चाई है और लोग कहते हैं कि अन्त समय में गुरु आ जायेगा।

परम दयाल जी के समय की बात है कि एक औरत होशियारपुर में मरी। इस औरत ने व्यास से नाम लिया हुआ था। जब वह औरत मरने लगी, तो उसने बताया कि बाबा चरन सिंह घोड़ा लेकर आये हैं और परम दयाल जी महाराज जहाज़ लेकर आये हैं। अब मैंने सोचा, मेरी समझ में आया कि उसने व्यास से नाम लिया हुआ था, इसलिये उसे घोड़ा दिखाई दिया और परम दयाल जी महाराज से उसने ज्ञान लिया था, इसलिये उसे जहाज़ दिखाई दिया।

अन्त समय जब तेरा आवे, आप हुए रखवाल री ॥

(क्रमशः)

पिण्डदेश और हड़ताल

दाता दयाल महर्षि शिवब्रत लाल जी महाराज

ईश्वर ने जब पिण्ड (मनुष्य के शरीर) को रचा तो हाथ, पाँव, कान, नाक, दाँत, आँख, जिह्वा, पेट तथा मन आदि सबको एक-२ काम सौंपा और उन्हें कहा, "अब सब मिल-जुल कर अपना-२ काम करो। तुमको इससे शान्ति तथा सुख मिलेगा।"

ईश्वर की आज्ञा के अनुसार सबने मिल-जुल कर कुछ दिन तो ठीक तरह से काम किया, परन्तु बाद में उनमें अनबन हो गई। सब के सब पेट के पीछे पड़ गये और उसे कोसने लगे। पाँव बोला, "इसी पेट ही के कारण मुझे जगह-२ दौड़ना पड़ता है, सब झगड़े-बखेड़े इसी पेट के लिए ही तो हैं।"

हाथ बोला, "इसी पेट के लिए ही तो मुझे सब काम-काज करने पड़ते हैं, जिससे मेरी शक्ति जाती रहती है। पेट ही दुःख और विपत्ति का कारण है।"

जिह्वा बोली, "तुम तो एक-२ काम करते हो, मुझे तो इसके लिए दुहरा काम करना पड़ता है। मैं पेट के लिए ही बातें बनाती हूँ। खाने-पीने को चुबला कर इसे भरती हूँ। मैं इससे बहुत ही दुःखी हूँ।"

दाँतों ने कहा, "तुम तो फिर भी अच्छे हो। हमारी हालत देखो। मैं तो पेट के लिए चक्की पीस-२ कर इसका पालन-पोषण करते-२ उकता गया हूँ।"

आँख बोली, "इस पेट के लिए ही मुझे भला-बुरा देखना पड़ता है।"

कान बोला, "इसी पेट के लिए ही तो मुझे बुरा-भला, उल्टा-सीधा सभी सुनना पड़ता है। मैं बहुत दुःखी हूँ इस पेट से।"

मन ने कहा, "मुझे तो इस निर्दयी पेट के लिए बुरा-भला सोचने तथा बन्दर की तरह सौ-२ प्रकार के नाच करने पड़ते हैं। यह कृतघ्न है, सबकी कमाई हड़प जाता है।

"दुःख विपत के जाल में, मुझको फँसाया पेट ने।
रात दिन चिन्ता ग्रसित, मुझको बनाया पेट ने॥"

सब इन्द्रियाँ एक-२ करके पेट का रोना रोईं और सबने हड़ताल करने का फैसला किया। पेट ने सबकी सुनी परन्तु बोला कुछ नहीं। इन सबको मूर्ख समझकर चुप हो गया। सभी आलसी बनकर बैठ गये। कुछ दिन बाद सबकी अवस्था बुरी होने लगी, सब के सब निर्बल और रोगी बन गये। हड़ताल करने को तो कर दी परन्तु उसका परिणाम बहुत बुरा निकला। सब निकम्मे बन गये किसी में भी काम करने की शक्ति नहीं रही।

जब पेट ने उनकी शोचनीय दशा को देखा तो उसे उन पर बहुत दया आई सबको सम्बोधित करके वह बोला, मूर्खो ! तुम निपट अज्ञानी हो। तुम समझते हो कि तुम सब मेरे लिए ही काम करते हो और मैं सबके श्रम का फल अकेले ही खा जाता हूँ। यह गलत है। मैं तो तुम सबके लिए ही काम करता हूँ। जो भी तुम लाते हो, मैं उसे अपने भीतर रखकर उसे पकाता रहता हूँ। लेई बना कर रस, लहू, मज्जा, धातु, वीर्य और ओजस् बनाकर तुम ही को बाँट दिया करता हूँ। तभी तो तुम में शक्ति और बल आता है। एड़ी से लेकर चोटी तक सबको शक्ति देकर बलवान्

बनाता हूँ। तभी तो आप काम करने के योग्य बनते हो। मैं तुम्हारे लिए कितना काम करता हूँ। मैं कृतघ्न हूँ या तुम?

सब के सब पेट की बात सुनकर लज्जित हुए और पेट से क्षमा माँग कर फिर से काम करने के लिए तैयार हो गये। फिर से पेट ने सबको आहार दिया तब उनमें फिर से बल, पौरुष और पराक्रम आ गया।

ईश्वर दूर खड़ा हुसा, उनकी लीला देख-२ कर मुस्कराता रहा और बोला, "यह हड़ताली कैसे मूर्ख थे। हड़ताल से अपनी ही हानि कर बैठे और अन्त में इन्हें पछताना पड़ा।

शब्द

1. सब रहो मिलजुल के, मिलजुल कर करो सब काम को।
   देखना अनबन न होने पावे, तुम में नाम को ।।
2. दु:ख वहाँ रहता है, कुमति का जहाँ डेरा पड़ा।
   सुमति से पाता है प्राणी, चैन और विश्राम को ।।
3. तज के आलस और निद्रा, त्याग दो परमाद को।
   काम में लाओ सदा तुम, दिन के आठों याम को ।।
4. एक छिन बेकाम रहना, भी कभी अच्छा नहीं।
   काम से पाते हैं नर, धर्म अर्थ मुक्ति काम को ।।
5. राधास्वामी योग साधो, राधास्वामी योग सीख।
   जीते जी सुख अन्त में लो, सत को और सतधाम को ।।

भारतीय नारी

(पेसीडोना कैलिफोर्निया के शेक्सपियर क्लब हाऊस में 18 जनवरी 1900 में स्वामी विवेकानन्द जी द्वारा दिया गया भाषण)

भारतीय स्त्री-जीवन के आदर्श का आरम्भ और अन्त मातृत्व में ही होता है। प्रत्येक हिन्दु के मन में 'स्त्री' शब्द के उच्चारण से मातृत्व का स्मरण हो आता है। हमारे यहाँ ईश्वर को भी माँ कहा जाता है। बाल्यकाल में प्रायः सभी हिन्दु बालक प्रातःकाल एक कटोरी में जल भर कर उसे अपनी माता के पास लेकर जाता है और माता अपने पैर का अंगूठा उसमें डुबो देती है, फिर पुत्र उस जल का पान करता है।

पश्चिम में स्त्री पत्नी है। वहाँ पत्नी के रूप में ही स्त्रीत्व का भाव केन्द्रित है किन्तु भारत में स्त्रीत्व को मातृत्व में ही केन्द्रीभूत माना गया है। पश्चिमीय देशों में गृह की स्वामिनी और शासिका पत्नी है, जबकि भारतीय घरों में घर की स्वामिनी और शासिका माता ही है। पश्चिमीय घरों में यदि माँ रहती भी हो, तो उसे पुत्र की पत्नी के आधीन रहना पड़ता है, क्योंकि घर की मालकिन पत्नी को ही माना जाता है। भारत में माता सदैव पुत्र के घर ही रहती है और उसकी पत्नी माँ के आधीन रहती है।

यदि आप पश्चिमीय लोग यह सवाल करें कि पत्नी के रूप में भारतीय स्त्री का स्थान क्या है? तो क्या मैं या

कोई भारतीय आपसे यह पूछ सकता है "माता के रूप में अमेरिकन स्त्री कहाँ है ? उस तपस्विनी एवं ओजस्विनी माता का, जिसने तुम्हें जन्म दिया उसका तुमने क्या सम्मान किया ? जिसने तुम्हें नौ महीने अपने गर्भ में रखकर, कष्ट सहे वह माता क्या है ? जो जरूरत पड़ने पर यदि उसे तुम्हारे लिए प्राणों की आहूति भी देनी पड़े, तो वह बीस बार आहुति देने को तैयार है, वह माता कहाँ है ? कहाँ है वह माँ, जिसका प्रेम कभी नहीं मरता ?" हे अमेरिका की महिलाओ ! मैं पूछता हूँ वह माता कहाँ है ? उस माँ को मैं आपके देश में पा नहीं सकूँगा। मुझे यहाँ एक भी पुत्र ऐसा नहीं मिलता, जो यह कहे कि माता का स्थान प्रथम है। मैं आपसे पूछता हूँ "क्या स्त्री संज्ञा भौतिक शरीर मात्र को ही दी जाने के लिए है ? हिन्दु मन उन आदर्शों को नहीं मानता, जिनमें यह कहा जाता है कि मांस को मांस से ही संलग्न रहना चाहिए। 'माँ' नाम से अधिक पवित्र तथा निर्मल दूसरा नाम कौनसा हो सकता है, जिसके पास वासना कभी फटक ही नहीं सकती ? यह है भारत का आदर्श।

मैं उस आश्रम (संन्यास आश्रम) का हूँ जो बहुत कुछ आपके कैथोलिक चर्च के परिव्राजक साधुओं से मिलता-जुलता है। इस आश्रम में सभी लोग प्रत्येक स्त्री को "माँ" कहकर पुकारते हैं, छोटी सी बालिका को भी माँ कह कर सम्बोधित किया जाता है। पाश्चात्य देशों में आने पर भी प्रत्येक स्त्री को 'माँ' सम्बोधित करने का मेरा संस्कार बना रहा। जब मैं यहाँ संस्कारवश किसी नवयुवती को माँ कहता, तो वह दहल जाती। पहिले तो मैं इस बात को समझ नहीं सका। बाद में मेरी समझ में आया कि किसी नौजवान महिला को माँ कहने पर, वह महिला समझती कि वह बूढ़ी है। भारत में स्त्रीत्व मातृत्व का ही बोधक है

और मातृत्व में महानता, स्वार्थशून्यता, कष्टसहिष्णुता और क्षमाशीलता का भाव निहित है। पत्नी तो छाया की तरह पीछे चलती है, उसे माता के जीवन का अनुकरण करना पड़ता है, यही उसका कर्त्तव्य है। माता प्रेम की मूर्त्ति है। भारत में, बालक जब कोई अपराध करता है, तो पिता ही उसे मारता-पीटता है। माता सदा पिता और बालक में बीच-बचाव करती है। परन्तु इस देश में बात बिलकुल उल्टी है। यहाँ बच्चों को मारने-पीटने का काम स्त्रियाँ ही करती हैं और पिता बीच-बचाव करता है। आप लोग जो करते हैं शायद अच्छा ही करते हैं, परन्तु हम तो वही करते हैं जो हमें सिखाया गया है। माँ महान् है। वह कभी भी अपने बच्चों को अभिशाप नहीं देती और सदा बच्चों को क्षमा करती रहती है। इस नश्वर संसार में, ईश्वर के प्रेम के समीपतम माता ही का प्रेम है। "हे माता! दया करो, मैं तो कुपुत्र हूँ। माँ! कुपुत्र तो अनेक हुए हैं किन्तु माता कुमाता कभी नहीं हुई।"

हिन्दु-संस्कृति के अनुसार स्त्री-जीवन का महान् उद्देश्य माता का गौरवमय पद हासिल करना है। मेरे माता-पिता ने कितने दिनों तक भगवान् से प्रार्थना की थी और कितने व्रत रखे थे कि उनकी एक सन्तान हो जाय। भारत में माता-पिता सन्तान की प्राप्ति के लिए भगवान् से प्रार्थना-याचना करते हैं। बिना प्रार्थना के उत्पन्न सन्तान मानो अधर्म से उत्पन्न सन्तान है। प्रार्थना करनी ही चाहिए। इस प्रकार की सन्तानों से जो कि अभिशापों के साथ जन्म लें या दुर्बलता के एक क्षण के कारण पेट में आ जायें, उससे क्या लाभ होगा माँ-बाप को और क्या लाभ होगा देश को। अमेरिका की माताओ! इस बात पर ज़रा विचार करो। अपने हृदय से पूछिये कि क्या आप सचमुच

नारी होना चाहती हैं, क्या अपनी सन्तान की प्राप्ति के लिए, ईश्वर से हार्दिक प्रार्थना करती हैं ? यदि नहीं, तो आपका विवाह मिथ्या है, आपका नारीत्व मिथ्या है और आपकी शिक्षा एक ढकोसला है। यदि आपके बच्चे प्रार्थना के बिना जन्म लेते हैं, तो वे संसार के लिए अभिशाप सिद्ध होंगे।

माता इतनी पूजनीय क्यों हैं ? क्योंकि हमारे शास्त्रों के अनुसार, माता के गर्भ में आने से, जन्म से पूर्व बच्चे के मन के ऊपर माता के जो प्रभाव पड़ते हैं वे उसके साथ सदैव रहते हैं। शास्त्रों का मत है कि बालक जन्म से ही देव या असुर पैदा होता है, शिक्षा आदि का स्थान तो बाद में आता है। यदि आपकी माता ने आपको रोगी शरीर दिया है, तो कितने ही औषधि-भण्डारों को निगल डालिये, फिर भी आपका शरीर अच्छा नहीं होगा।

माता की पूजा क्यों होनी चाहिए ? क्योंकि माता ने अपने को पवित्र रखने के लिए अनेक कठोर तपश्चर्याएँ कीं। क्योंकि माँ की दृष्टि में बालक ईश्वर का ही पवित्रतम प्रतीक है। हमारा आदर्श माता के प्रति प्रेम होना चाहिए— उस माता के प्रति प्रेम, जो त्याग, प्रेम और सहिष्णुता की प्रतिमूर्त्ति है जिसने बालक को जन्म देने तथा पालन-पोषण करने के लिए वर्षों अपने शरीर को, मन को, भोजन को वस्त्रों को, यहाँ तक कि अपनी कल्पनाओं को शुद्ध रखा, पवित्र रखा। यही कारण है कि हमें माता की पूजा करनी चाहिए। उसका सत्कार करना चाहिए। माता के बाद, दूसरा स्थान है पत्नी का और तीसरा स्थान है कन्या का।

शिक्षा और संस्कृति की बात पुरुषों पर अवलम्बित है। जहाँ के पुरुष शिक्षित और सुसंस्कृत होते हैं, वहाँ की स्त्रियाँ भी शिक्षित और सभ्य होती हैं। जहाँ पुरुष सभ्य

और शिक्षित नहीं होते, वहाँ स्त्रियाँ भी वैसी ही होती हैं। आजकल पश्चिमीय ढंग पर उच्च शिक्षा देने की ओर भारतीयों का विशेष ध्यान है, परन्तु कुछ भारतीय ऐसे हैं जो पश्चिमीय शिक्षाप्रणाली को बिलकुल ही पसन्द नहीं करते। यह आश्चर्य की बात है कि आक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज जैसे विश्वविख्यात विश्वविद्यालयों के दरवाज़े स्त्रियों के लिए आज भी बन्द हैं। ठीक यही हालत हार्वर्ड और येल आदि विश्वविख्यात विश्वविद्यालयों की है। पर कलकत्ता विश्वविद्यालय ने बीस वर्ष पूर्व ही स्त्रियों के लिए अपना द्वार खोल दिया था। मुझे स्मरण है, जिस साल मैं बी०ए० में उत्तीर्ण हुआ, उस साल कई लड़कियाँ भी बी०ए० में उत्तीर्ण हुई थीं बड़ी सफलता के साथ।

हमारे धर्म में तो स्त्रियों को शिक्षा देने का कहीं भी निषेध नहीं है। प्राचीन काल में विद्यापीठों में लड़के,लड़कियाँ दोनों ही जाते थे। बाद में विदेशियों के आक्रमणों के कारण तथा शासन करने के कारण सारे राष्ट्र की तथा विशेषकर स्त्रियों की शिक्षा उपेक्षित हो गई। विदेशियों की शिक्षा प्रणाली तथा शिक्षासंस्थाएँ तो थोड़े मूल्य पर उपयोगी गुलाम पैदा करने के कारखाने हैं, जहाँ मुन्शी, डाकबाबू, तारबाबू आदि पैदा होते हैं, इससे अधिक नहीं।

फलस्वरूप लड़के और लड़कियाँ, दोनों ही की शिक्षा-की उपेक्षा की जा रही है। आप लोग हिन्दु स्त्रियों पर अत्याचारों के प्रति दुःख प्रदर्शित करते हैं, पर गुलाम भारत में पुरुषों के प्रति भी बहुत ही अत्याचार होते हैं उनको आप क्यों नहीं देखते ? विदेशियों के राज्य में इससे अधिक आशा भी क्या की जा सकती है ? विदेशी विजयी हमारी भलाई करने के लिए तो आये नहीं, वह तो भारत से धन चाहते हैं।

किसी भी राष्ट्र की प्रगति का सर्वोत्तम थर्मामीटर है

वहाँ की महिलाओं के साथ होने वाला व्यवहार। प्राचीन यूनान में पुरुष और स्त्री की स्थिति में कोई अन्तर नहीं था, समानता का विचार सम्मिलित था। भारत में तो स्त्री का बहुत ही सम्मान था। अविवाहित, एकाकी पुरुष को अपूर्ण माना जाता था, आधा माना जाता था। स्तीत्व हिन्दु नारी के जीवन की केन्द्रीय भावना है। पत्नी एक वृत्त का केन्द्र है, जिसका स्थायित्व उसके स्तीत्व पर निर्भर है। इसी आदर्श की अति के कारण हिन्दु विधवाएँ जलाई गईं। हिन्दु स्त्रियाँ बहुत ही आध्यात्मिक और धार्मिक होती हैं, संसार की सभी महिलाओं से अधिक। यदि हम इन महिलाओं की विशिष्टताओं की रक्षा कर सकें और साथ ही उनका बौद्धिक विकास भी कर सकें, तो भविष्य की हिन्दु नारी संसार की आदर्श नारी होगी।

महत्त्वपूर्ण सूचना

सभी सत्संगी भाई-बहनों को सूचित किया जाता है कि हर वर्ष की भाँति इस वर्ष भी गुरु-पूर्णिमा का पावन पर्व मानवता मन्दिर होशियारपुर के प्रांगण में 26 जुलाई 1991 को सम्पन्न होगा।

7 बजे प्रातः आरती पूजन तथा 8 से 11 बजे तक परमसन्त सद्गुरु हजूर मानव दयाल जी महाराज का सत्संग होगा। सभी सत्संगी भाई-बहन सादर आमन्त्रित हैं।

जनरल सेक्रेटरी

महात्मा विदुर के वचन

(1) सब तीर्थों में स्नान और प्राणियों के साथ कोमलता का व्यवहार—यह दोनों एक समान हैं।

(2) आत्मज्ञान, खिन्नता का अभाव, सहनशीलता, धर्म-परायणता, वचन की रक्षा तथा दान—ये सब गुण अधम पुरुषों में नहीं होते।

(3) इन्द्रियों पर वश न होने के कारण बड़े-२ साधु भी कर्मों से तथा राजा लोग राज्य के भोग-विलास से बन्धे रहते हैं।

(4) जिसने स्वयं अपनी आत्मा को ही जीत लिया है, उसकी आत्मा ही उसका बन्धु है। वही सच्चा बन्धु और वही नियत शत्रु है।

(5) मनुष्य का शरीर रथ है, बुद्धि सारथी है और इन्द्रियाँ इसके घोड़े हैं। इनको वश में करके, सावधान रहने वाला एवं धीर पुरुष, काबू में किये हुए घोड़ों के रथ की भाँति सुखपूर्वक यात्रा करता है।

(6) काम, क्रोध और लोभ—ये आत्मा का नाश करने वाले, नरक के तीन दरवाज़े हैं। अतः इन तीनों को त्याग देना चाहिए।

(7) विनाशकाल उपस्थित होने पर, बुद्धि मलिन हो जाती है। फिर तो न्याय के समान प्रतीत होने वाला अन्याय दिल से बाहर नहीं निकलता।

गुरु खोजो री जग में दुर्लभ रत्न यही

परमसन्त परम दयाल पण्डित फकीर चन्द जी महाराज

तुम लोग तो गुरु उसको मानते हो, जिसका रूप तुम्हारे मन में प्रकट हो। एक बार एक सरदार मिला जो ज़ार-२ रोता था। मैंने उसे कहा, "तू तो बड़ा ही प्रेमी है, जो रोता है।"

उसने कहा, "महाराज जी! प्रेमी तो क्या हूँ। बस अपने कर्मों को रोता हूँ।" मैंने पूछा, "बात क्या है भाई?

वह बोला, "मैं किसी महापुरुष के पास पाठी था। मेरे पास बहुत सी स्त्रियाँ आती थीं उनमें से बहुत सी मुझे प्यार करने लगीं। मैं अज्ञानी हूँ मैंने छः, सात स्त्रियों से सम्भोग किया। कल रात को मैंने आपका सत्संग सुना तो मेरी आँखें खुल गईं। अपने कुकर्मों को याद करके रोना आ रहा है, इसलिये रो रहा हूँ।"

इसलिये ही तो मैं बार-२ कहता हूँ कि स्त्रियाँ किसी भी साधु महात्मा से एकान्त में नहीं मिलें और न ही उनके पाँव छुएँ और न ही उनकी शारीरिक सेवा करें। सत्संग में जाओ, वचन सुनो और वाणी को समझने का प्रयत्न करो, उस पर अमल करो। टाँगें दबाने से तुम्हारा कल्याण नहीं होगा।

मैंने सत्संग शुरू किया था :—

चल सतगुरु की हाट, ज्ञान बुद्धि लाइये।
कीजे साहब से हेत परम पद पाइये॥

सतगुरु की संगत पर जा कर, उसकी दुकान पर क्या मिलता है, सच्चा ज्ञान मिलता है। असली सतगुरु का देश सत, अलख और अगम में है। पर तुम तो सतगुरु को समझते हो होशियारपुर, व्यास या आगरे में बसने वाला। यदि वह सच्चा गुरु है तो तुमको वह बता देगा कि असली गुरु रहता कहाँ है। वह तुम्हें अपने मन्दिर या डेरे में नहीं फँसायेगा।

छवि प्रीतम की महामोहिनी, महलन अजब उजास।
जगत् जीव सब हुए हैं बावरे, नहीं करें चरण विश्वास॥
धन और मान भोग रस चाहें, सब पड़े काल की फाँस।

जब वह सरदार मुझे अपने घर ले गया तो उसके काम बन गये और इस ख्याल से कि मैंने उसके काम बना दिये, वह मेरा बहुत आदर-सत्कार करने लगा। यदि मैं उसका आदर-सम्मान ग्रहण करता हूँ और उसे भुलावे में रखता हूँ तो मेरा क्या होगा? मैं अपराधी बनूंगा। इसलिये मैं बार-२ कहता हूँ, "ऐ मानव! जो कुछ भी तुम्हें प्राप्त होता है वह तुमको अपने ही कर्मों के कारण मिलता है, इस जन्म के या पिछले जन्मों के कर्मों के कारण। किसी सन्त या महात्मा ने फूंक मार कर तुम्हें कुछ नहीं देना। देना है तो तुम्हारी श्रद्धा तथा विश्वास तथा कर्मों ने देना है :--

जगत् जीव सब भये हैं बावरे, नहीं करें चरण बिश्वास।

तुम चरणों से क्या समझते हो? मैं जानता हूँ कि तुम चरण से मेरे पैर, साँवले शाह या दाता दयाल जी के पाँव समझते हो। दीवानो! तुम सत्संग का मतलब ही नहीं समझे। हजूर महाराज ने अपनी प्रेमवाणी में लिखा है कि सतगुरु केवल शब्दस्वरूपी राधास्वामी दयाल है। उसके चरण प्रकाश हैं। वह जो प्रकाश है वह गुरु के असली चरण हैं। जब तक कोई आदमी अपने अन्तर में पहिले प्रकाश

को प्रकट नहीं करेगा, वह अपने असली घर नहीं जा सकता। जब प्रकाश हो जाता है फिर शब्द गुरु आ जाता है :—

शब्द गुरु को कीजिए, बहुते गुरु लवार ।
अपने - २ स्वाद को, गैर ठौर बटमार ।।
शब्द गुरु को मानो, सतगुरु चीन्हो रे भाई ।
सतनाम बिन सब नर बूढ़े, नरक पड़े चतुराई ।।
वेद पुराण, भागवत गीता, इनको सभी दृढ़ावैं ।
जाको जन्म सफल रे भाई, सो गुरु पूरा पावैं ।।
बहुत गुरु संसार कहावें, मन्त्र देत है काना ।
उपजै, विनसै या भवसागर, मर्म न काहू जाना ।।
सतगुरु एक जगत् में गुरु है,सो भव से कढ़िहारा ।
कहें कबीर जगत् के गुरुआ,मर मर ले अवतारा ।।

कोई तो बाबा फकीर चन्द को गुरु मानता है, कोई महर्षि शिवब्रत लाल जी को, कोई किसी और को। परन्तु सतगुरु नाम है सच्चे ज्ञान का, सच्ची बुद्धि का, सच्चे विवेक का। परन्तु दुनिया तो देह ही को गुरु मान कर पागल हो रही है। देह को गुरु मानने से ही धर्मों-धर्मों तथा फिरकों-फिरकों में झगड़े पड़ गये और पड़ रहे हैं। मैं राधास्वामी मत का हूँ। स्वामी बाग़ वाले दयाल बाग़ से घृणा करते हैं। व्यास वाले आगरा वालों से घृणा करते हैं हिन्दु मुसलमानों से घृणा करते हैं, मुसलमान हिन्दुओं से घृणा करते हैं। सिक्ख अपना अलग राग अलापते हैं। अपना-२ मत, अपना-२ हाल है।

यदि सच्चे साहिब से मिलना है तो :—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः, गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म, तस्मै श्री गुरुवे नमः ।।

गुरु को साक्षात् परमतत्त्व का अवतार समझकर उससे प्यार करो, उसकी शरणागत हो जाओ। प्रकाश को पकड़ो। इसके आगे शब्दब्रह्म है, नाम है, जिसने तुम्हारा बेड़ा पार करके तुमको आवागमन से सदा के लिए छुड़ाना है। सब कुछ तुम्हारे अपने ही अन्तर में है। इधर-उधर भटकने की ज़रूरत नहीं अपने ही घट में बैठो। बस!

यदि मेरे वचनों से किसीका दिल दु:खा हो तो उसके लिए मैं क्षमा चाहता हूँ।

सबको शान्ति!

आवश्यक सूचना

सभी 'मानव मन्दिर' पत्रिका के पाठकों को सूचित किया जाता है कि अपना पता (Address) बदल जाने पर अपना नया पता ग्राहक नं.......... लिखकर समय पर अवश्य सूचित करें, ताकि पत्रिका पुराने पते पर बन्द होकर नये पते पर जाये।

सेक्रेटरी

दाता दयाल जी महाराज की शिक्षाप्रद जीवन की कुछ घटनाएँ

दुनिया सत्यप्रिय को दीवाना समझती है। मेरे निकट-सम्बन्धी और मेरे कुल के लोग मुझे भी पागल और जनूनी कहते हैं, क्योंकि मेरा झुकाव अब दुनिया की इज़्ज़त, दौलत और हकूमत की तरफ नहीं और मेरे पागल होने में शक ही क्या है ? न दीन का रहा और न दुनिया का। रात-दिन पागलों की तरह ज़िन्दगी काटता हूँ। जो कुछ खाने का बुरा-भला मिल गया, उसी पर ही सन्तोष कर लिया। मगर मुझे चुप रहना पसन्द नहीं। मैं बड़बड़ाता तथा लेखनी की घिस-२ करता रहता हूँ।

20 सितम्बर 1904 को मेरी पत्नी का देहान्त हो गया। मैं एक महीने तक पागलों की तरह घूमता रहा। दिल चाहत था कि अपनी जीवन यात्रा को पूरा कर दूं, परन्तु प्रकृति को ऐसा स्वीकार न था। उसने मुझसे अभी लिखने का काम लेना था। मैंने महात्मा हंसराज जी से प्रार्थना की, यदि वह कुछ समय के लिए मुझसे अपनी संस्था दयानन्द कालेज लाहौर में सेवा लेना स्वीकार करें, तो मैं उपस्थित हूँ। महात्मा जी जिनके त्याग, निःस्वार्थ भावना तथा निष्काम काम के प्रति मेरे दिल में बड़ी श्रद्धा है, उन्होंने मुझे आर्य गज़ट के सम्पादक का काम दिया। मैंने इसे स्वीकार कर लिपा और अगस्त 1905 में मैं लाहौर चला गया। यहाँ भी कुछ पुरुषों ने मेरे से प्रार्थना की कि मैं राधास्वामी मत की असली शिक्षा-सम्बन्धी कोई छोटी

सी पुस्तक लिखूं, ताकि धार्मिक जिज्ञासुओं को राधास्वामी मत के विषय में सही ज्ञान मिले। परन्तु मैं इस काम को कर नहीं सका। मैंने अपनी सारी कोशिशें इस बात में लगानी ठीक समझीं कि किसी तरह जो भ्रान्तियाँ और विचारधाराएँ आर्य समाज में फैली हुई हैं उन्हें अपने लेखों द्वारा दूर करूँ। मैं आर्य समाज के कार्यों में सदा रुचि लेता रहा हूँ।

सन्तमत, जिसकी शिक्षा राय सालिगराम साहिब ने दी है केवल पुस्तकीय ज्ञान नहीं है, बल्कि अन्तरीय ज्ञान है और वह किसी भी पुस्तक के आधीन नहीं। सन्तों की वाणी इसके समझने में सहायक हो सकती है।

पुस्तक छाँड़ जो बाँचई, पण्डित कहिये सोय।

इसलिये किसी रसाला या पत्रिका को पढ़कर अपनी अन्तिम राय बना लेना उचित नहीं।

जो जिसके पास होता है, वही वह तुम्हें देता है। तुम आग को अपनी साँस देते हो, वह तुम्हें शोले की लपट देती है। दुनिया में पग-२ पर बदले का कानून बरता जाता है। जहाँ देना है, वहाँ लेना भी है। यह मत समझो कि देने वाला लेगा नहीं। किसी न किसी शक्ल में, वह लेकर ही शान्त होगा। माना कि तुमने किसीको रोटियाँ खिलाई, वह तुम्हें यदि रोटियाँ वापिस नहीं दे सकता, वह आशीर्वाद देगा, शुभकामनाएँ देगा, अपना प्रेम देगा। यदि वह तुम्हारे किसी भी काम आ जाय, तो बहुत ही अच्छा है नहीं तो यह तो समझो कि कम से कम उसकी शुभकामनाएँ तो तुम्हारे साथ हैं।

दुनिया ज़िन्दों की कदर नहीं करती, मुर्दों को पूजती है, नवी, वली, कुतुब, अवतार, ऋषि मुनि आते और चले जाते हैं। उनके जीवन से इने-गिने लोग ही फायदा उठाते

हैं। परन्तु उनके लोप होने पर उनकी कब्रों तथा समाधियों पर सिर नवाते तथा मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए प्रार्थना करते हैं। उनके नाम पर मेले लगाते हैं, त्यौहार मनाते हैं और भण्डारे करते हैं। जीवित पिता को तो लोग पूछते नहीं, उसके मरने पर श्राद्ध और बरसी मनाते हैं।

आपको भेद की बात बताता हूँ कि तुम लकीर के फकीर मत बनो, मुर्दों की पूजा करना छोड़ दो। ज़िन्दा बदन, ज़िन्दा बचन, ज़िन्दा हस्ती और ज़िन्दा दिलों से सम्बन्ध पैदा करना सीखो। यदि मुर्दा वैद्य का नाम लेने से, वह तुम्हें दवा नहीं दे सकता, तो फिर मुर्दों की कब्र पर उत्सव मनाने और भण्डारे करने से तुम्हें क्या मिलेगा ?

यदि नाक रखते हो तो जीवित खिले हुए गुलाब की सुगन्धि सूँघो, नकली, कागज़ी या चित्र के गुलाब में क्या सुगन्धि मिलेगी ? यदि कान रखते हो, तो ज़िन्दों के ज़िन्दा भाषण सुनो, मुर्दा वचन आपके दिल और दिमाग को इतना नहीं हिलायेगा। यदि आँख रखते हो, तो जीवित शरीर के दर्शन करो। उसके चित्र, उसकी कागज़ पर लिखी हुई जीवनी और उसकी यादगारी तथा समाधि में क्या धरा है ? यह बताओ कि तुम मुर्दा हो या ज़िन्दा। मुर्दा हो तो बेशक मुर्दों से सम्बन्ध पैदा करो, यदि ज़िन्दा हो तो ज़िन्दों जैसा काम भी करो। दृष्टि सदा ऊँची रखो, मन को उदार करो तथा बुद्धि को विस्तृत। न किसी से शत्रुता रखो न ईर्ष्या। न धार्मिक संकोच में पड़ो न धार्मिक पक्षपात में।

मासिक सन्देश

परमसन्त सद्गुरु हुज़ूर मानव दयाल
डा० ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज

मेरी अपनी ही आत्मा के अंश,

परमप्रिय सत्संगियो :

राधास्वामी, परम दयाल जी सहाई !

पिछले मासिक सन्देश में मैंने आपको 14 फरवरी 1991 तक की दौरे की सूचना दी थी। उसी दिन सायंकाल 4 बजे पंजाब मेल से रवाना होकर, हमें दूसरे दिन प्रातःकाल जालन्धर पहुँचना था। किन्तु हमारी गाड़ी करीब 2 घण्टे लेट हो गई और हमें काफी समय तक लखनऊ रेलवे स्टेशन पर प्रतीक्षा करनी पड़ी। यह एक दुःख की बात है कि स्वतन्त्रता प्राप्त करने के बाद रेलकर्मचारियों में अपने कर्त्तव्य के प्रति शिथिलता आ गई है। आये दिन हमें रेल-दुर्घटनाओं की सूचना मिलती रहती है। जब हमारा देश स्वतन्त्र नहीं था और बर्तानिया साम्राज्य के आधीन था, उस समय विशेषकर रेल विभाग में कभी भी अनुशासन-हीनता नहीं होती थी। 99% रेलगाड़ियाँ ठीक समय पर चलती थीं। हरएक कर्मचारी दिलोजान से अपने कर्त्तव्य का पालन करता था। परम दयाल जी महाराज स्टेशन मास्टर रहे हैं। उनके चरित्र का तो कहना ही क्या है? वह जब अपने दफ्तर में निजी पत्र लिखते थे, तो कागज़, कलम, दवात भी घर से ले जाते थे। उनकी सत्यपरायणता

का कोई मुकाबला नहीं । जबकि स्टेशन के दूसरे कर्मचारी और खासकर स्टेशन मास्टर हज़ारों रुपये महीना रिश्वत के रूप में लेते थे पंडित फकीर चन्द जी महाराज एक पाई भी किसी से नहीं लेते थे । दाता दयाल जी महाराज परम दयाल जी को सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र के समान समझते थे । आमदनी कम और खर्चा ज्यादा होने के कारण जब उन्हें तंगी महसूस होती थी, तो वह अपनी ड्युटी के बाद रात को कुली का काम करके कमी को पूरा करते थे । इसी सच्चाई और ईमानदारी को जीवन में अपनाने के कारण उन्होंने न ही केवल अपने विभाग में उन्नति प्राप्त की, बल्कि आध्यात्मिकता के उच्चतम शिखर पर पहुँचे और हमारे समय के एकमात्र सद्गुरु वक्त बनकर उन्होंने हज़ारों जीवों को भवसागर से पार लगाया ।

उन्होंने अपने सत्संगों में कई बार यह कहा है कि सत्य पर दृढ़ रहने वाला व्यक्ति हमेशा सुखी रहता है । वह इतने सत्यपरायण थे कि उन्होंने अपने पिता को भी रिश्वत लेने से बचा लिया । एक बार फकीर चन्द जी महाराज अपने पिता को अपने स्टेशन से कुछ मील दूर मिलने के लिए गये । बातचीत करने के बाद जब सायंकाल वापिस लौटने लगे तो उनके पिता श्री ने उन्हें सायंकाल का भोजन खाने के लिए निमन्त्रण दिया । परम दयाल जी ने यह कह करके कि उन्हें भूख नहीं है, खाना खाने से इन्कार कर दिया, परन्तु अपने घर रवाना होने से पहिले उन्होंने एक ढाबे पर बैठकर खाना खाया । उनके पिता के किसी मित्र ने उन्हें खाना खाते हुए देख लिया । दूसरे दिन उसी व्यक्ति ने बातों-२ में उनके पिता श्री से पूछा, "क्या कारण है कि आपका बेटा फकीर चन्द कल ढाबे पर खाना खा रहा था । मस्त राम जी ने उसका उत्तर न दिया, किन्तु मन में बहुत

दु:खी हुए। दो-तीन दिन बाद परम दयाल जी महाराज फिर अपने पिता श्री के पास गये। जब पिता जी ने उनसे ढाबे पर खाना खाने का कारण पूछा, तो परम दयाल जी ने कहा, "पूज्य पिता जी ! यदि आप नाराज़ न हों तो मैं सच्ची बात कह दूं।" मस्त राम जी ने उन्हें सच कहने को कहा, परम दयाल जी ने कहा, "पिता जी ! आपकी कमाई हक़हलाल की नहीं है, रिश्वत की है। इसलिये मैं आपके यहाँ भोजन नहीं करना चाहता।" इस मीठे लहज़े में अपने पुत्र की सच्ची बात को सुनकर मस्त राम जी की आँखों में आँसू आ गये। उस दिन से उन्होंने रिश्वत छोड़ दी। सच्चाई और प्रेम भी छूत की बीमारी की तरह असर करते हैं। यदि कोई व्यक्ति सच्चा हो, तो उसके सम्पर्क में आने वाले लोग भी सहज में सच्चाई को अपनाते हैं। यही बात प्रेम की है। प्रेम करोगे, तो प्रेम मिलेगा, घृणा करोगे तो घृणा मिलेगी।

हम करीब 12 बजे दोपहर जालन्धर पहुँचकर 2 बजे दोपहर तक मानवता मन्दिर आ गये 17 फरवरी को मासिक सत्संग आयोजित था। हमेशा की भाँति 16 तक ही बाहर के सत्संगी बहुत अधिक संख्या में पहुँच गये। इसलिये 16 फरवरी रात को सत्संग भवन में बैठने की जगह तक नहीं थी। हर महीने की भाँति रात्रि का सत्संग काफी देर तक चला और सभी सत्संगियों पर मस्ती छा गई। बटाला के सत्संगियों ने दूसरे दिन प्रातःकाल सैकड़ों सत्संगियों की चाय-नाश्ते से सेवा की। मैंने पहिले भी कई बार इन लोगों की श्रद्धा के बारे में आपको इस सन्देश द्वारा सूचित किया है। यह सत्संगी हर महीने निश्चित रूप से मानवता मन्दिर आते हैं और उनमें से कुछ 3, 4 दिन तक यहाँ पर रहते हैं। श्री राम प्रताप जी का परिबार और डा० चन्द्र नगेश

नेगी का परिवार विशेषकर बावजूद यात्रा की कठिनाइयों के हर महीने ही नहीं बल्कि कई बार 15 दिन के बाद भी मन्दिर में आकर ठहरते हैं। जितने सत्संगी साधना की दृष्टि से मन्दिर में आकर रहते हैं, हमेशा बहुत ही प्रसन्न होकर जाते हैं। उनका कहना है कि उन्हें मानवता मन्दिर में रहकर अत्यन्त शान्ति मिलती है। यह इसलिये स्वाभाविक है क्योंकि बीसियों वर्षों तक परम दयाल जी महाराज के सत्संगों की अमृतवर्षा यहाँ होती रही है। उनके विचारों और उनके अनुभव तथा सच्चाई की किरणें इस मन्दिर में मौजूद हैं। उनके चोला छोड़ने के बाद भी सच्चाई और सत्संगों का सिलसिला ज्यों का त्यों जारी रहा है। धीरे-२ न ही केवल सत्संगियों की बल्कि पराभक्ति पर सच्चे दिल से चलने वाले लोगों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है। मासिक सत्संग हमेशा की भाँति बहुत प्रभावशाली रहा।

22 फरवरी तक दैनिक सत्संग भी लगातार चलते रहे। 23 फरवरी को हम फिर देहली के रास्ते अलवर, भीलवाड़ा और जयपुर के लिए रवाना हो गये। देहली में रात्रि का विश्राम करने के बाद हम प्रातःकाल 7 बजे कार के द्वारा अलवर के लिए रवाना हो गये। क्योंकि हमारी कार का चालक एक नया व्यक्ति था, इसलिये हम किसी गलत सड़क पर चल पड़े। इसके बावजूद भी हम एक बजे दोपहर तक श्री मूल चन्द गान्धी एडवोकेट के घर पर पहुँच गये। कुछ ही मिनटों के अन्दर हमारे पहुँचने की खबर पड़ौस के सत्संगियों तक पहुँच गई और तुरन्त सौ के करीब सत्संगी हमें मिलने के लिए आ गये। अलवर का केन्द्र बहुत ही पुराना है और यहाँ के सत्संगियों की श्रद्धा, आस्था बहुत मज़बूत है। यहाँ के पुराने सत्संगी श्री मोहन लाल बार-२ परम दयाल जी के अलवर में पहिली बार आने का

किस्सा सुनाया करते हैं।

उनके अनुसार करीब 50 वर्ष पूर्व अलवर के बहुत से सत्संगी दशहरे के मौके पर सलवान पब्लिक स्कूल में सत्संग सुनने के लिए आये। इन सत्संगियों में से श्री मोहन लाल और श्री जगन्नाथ खुराना बहुत प्रभावित हुए थे। उन्होंने दशहरे के सत्संग के समाप्त होने से एक दिन पहिले बड़ी श्रद्धा से हाथ जोड़ कर परम दयाल जी से प्रार्थना की कि वह अलवर पधारने की कृपा करें। खासकर मोहन लाल जी के मन में यह इच्छा थी कि परम दयाल जी के आशीर्वाद से उनके घर में पुत्र-लाभ हो जाये। परम दयाल जी ने उन्हे बड़ी सख्ती से कहा, "मैं आपका नौकर नहीं हूँ। अगर मुझे अलवर ले चलना है तो मन्दिर के लिए तीन हज़ार रुपया भेंट करो। सत्संगियों ने इस बात को स्वीकार किया और दूसरे दिन प्रातःकाल कहीं से उधार लेकर तीन हज़ार रुपया परम दयाल जी के सामने श्री गोपाल दास जी को दे दिया।

जब दूसरे दिन प्रातःकाल अलवर की गाड़ी में परम दयाल जी महाराज श्री गोपाल दास और अलवर के सत्संगियों के साथ अलवर के लिए रवाना हो रहे थे, उन्होंने गोपाल दास को सम्बधित करते हुए कहा, "गोपाल दास! इन्हें तीन हज़ार रुपया वापिस कर दो, मैं तो इनकी परीक्षा ले रहा था।" उनकी इस दयालुता को देखकर अलवर के सत्संगी गद्‌गद हो गये और उनकी आँखों में आँसू आ गये। उसी दिन से अलवर का परम दयाल जी से घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया। परम दयाल जी हर वर्ष राजस्थान के दौरे पर लगातार अलवर भी पधारते रहे। इसी परम्परा को निभाते हुए मैं भी हर वर्ष अलवर सत्संग के लिए जाता रहता हूँ। जब मैं शायद 1986 में मैटाडोर से आचार्य श्री शब्दानन्द

अलवर के कुछ सत्संगियों और साधना के साथ अलवर जा रहा था, मैंने साधना को कहा, "अलवर के आखिरी तीसरे सत्संग में, 'सतगुरु परम दयाल री कोई कदर न जाने' शब्द पढ़ना तो अच्छा रहेगा।" किन्तु साधना ने कहा, "महाराज जी ! मेरे विचार में आखिरी सत्संग के लिए तो फकीर के लक्षण वाला शब्द अच्छा रहेगा।" मैं इस बात से सहमत हो गया।

आखिरी सत्संग सायंकाल 7 बजे से शुरू हुआ और 10 बजे तक सभी सत्संगी बिना अपनी आँखों को मेरे चेहरे से हटाये मस्ती में सत्संग सुनते रहे। जब सत्संग समाप्त हुआ, जगन्नाथ खुराना ने कहा, "महाराज ! आज का सत्संग बहुत गज़ब का था। हम सब ऐसा महसूस कर रहे थे कि साधना के रूप में भण्डारी माता और आपके रूप में परम दयाल जी महाराज सत्संग की वर्षा कर रहे थे। आश्चर्य की बात तो यह है कि जब 1981 में परम दयाल जी महाराज ने अलवर में आखिरी सत्संग दिया था, तो इसी शब्द पर दिया था।" मैं आपको मासिक सन्देश में ऐसी घटनाओं की सूचना इसलिये देता हूँ, ताकि आप इस बात को न भूलें कि सत्संग की धारा मालिक की मौज से चलती है। इसीलिये कहा जाता है कि :

बिन सत्संग विवेक न होई ।
हरि कृपा बिनु सुलभ न सोई ।।

इस बार अलवर में हम दो दिन ठहरे और दोनों दिन बड़े प्रभावशाली सत्संग हुए। क्योंकि 26 रात को अलवर के सत्संगियों के आग्रह पर हम अलवर में ठहर गये, इसलिये हमने कार को आचार्य लाल चन्द, आचार्य शब्दानन्द के साथ 26 फरवरी दोपहर को ही भीलवाड़ा भेज दिया। मैं और भाग्य माता जी पिंकसिटी एक्सप्रैस के द्वारा 27 फरवरी

प्रातःकाल को भीलवाड़ा के लिए रवाना हो गये। दुर्भाग्य-वश गाड़ी ढाई घण्टे लेट हो गई और हम सायंकाल साढ़े छः बजे भीलवाड़ा पहुँचे। पचासों सत्संगी स्टेशन पर हमारे स्वागत के लिए मौजूद थे। 27, 28 फरवरी और 1 मार्च को शास्त्री नगर में कृषक जी के पोते श्री तेजेन्द्रमणि के घर पर विशाल सत्संग हुआ, जिसमें कप्तान लाल चन्द ने भी योगदान दिया। मेरे सभी सत्संगों में अलवर, चित्तौड़गढ़ और आसपास के स्थानों से आये हुए सत्संगी बड़े गहरे प्रेम का अनुभव करते हुए, मन्त्रमुग्ध होकर बैठे रहे। यहाँ के सत्संगियों में से श्री तेजेन्द्रमणि गुप्ता का परिवार, आचार्या गीताबाई सर्राफ का परिवार और आचार्या मोहिनीबाई का परिवार तथा श्रीमती बुद्धमति का परिवार पूरी तरह से शरणागत हैं। यूँ तो सारे भीलवाड़ा, अजमेर, ब्यावर और चित्तौड़गढ़ के सत्संगी हमेशा ऐसे मौके पर भीलवाड़ा आ जाया करते हैं और उनकी आस्था श्रद्धा का पारावार नहीं है। इसलिये किसी भी स्थान के सत्संगियों की श्रद्धा का दूसरों की श्रद्धा से मुकाबला करना जायज़ नहीं है। मैंने भीलवाड़ा के सत्संगियों को उनकी इस बात की शिकायत कि मैं दो साल के बाद भी उन्हें सत्संग के लिए दो दिन से अधिक न दे सका। उत्तर देते हुए कहा, "मेरे प्यारे भील-वाड़ा के सत्संगियो! मैं तुम्हारी श्रद्धा और प्रेम की कदर करता हूँ और आपकी शिकायत को इसलिये जायज़ समझता हूँ कि बच्चों का माँ-बाप पर अधिकार होता है और वह अपने माता-पिता से अपनी ज़रूरत के मुताबिक हर समय माँग कर सकते हैं। लेकिन मैं आपको यह कहना चाहता हूँ कि आपकी श्रद्धा इतनी अगाध होते हुए भी कई बार दोषपूर्ण हो जाती है। जब आप यह कह देते हैं कि आप 6 घण्टों से प्रतीक्षा करते रहे और मैं देर से पहुँचा, तो आपकी

श्रद्धा में कमी आ गई। मैंने आपकी इस शिकायत को बच्चे की तोतली भाषा समझकर स्वीकार किया। लेकिन मैं यह कहना चाहता हूँ कि लोग मिनिस्टर और नेताओं की दस-२ घण्टे प्रतीक्षा करते हैं और उनके देर से आने पर शिकायत नहीं करते। इसलिये जब मेरा और आपका प्रेम अटूट है, तो आपके मन में ऐसा विचार नहीं आना चाहिए। मैं आपको यह बात सच्चे दिल से कह रहा हूँ। मैं भी भविष्य में आपको अधिक समय अवश्य दूँगा।"

इससे सभी सत्संगी गद्‌गद हो गये और कहने लगे कि मैंने दो दिन के सत्संगों में उनकी थोड़े समय देने की शिकायत को बिलकुल दूर कर दिया। पहिली मार्च को हम सायंकाल 3 बजे भीलवाड़ा से रवाना होकर साढ़े पाँच बजे तक अजमेर श्री सुमेर सिंह राठौर के निवासस्थान फकीर भवन पहुँच गये। वहाँ पर बहुत से सत्संगी मौजूद थे। एक घण्टे के सत्संग में सम्मिलित होने वाले सत्संगियों में राजस्थान शिक्षा विभाग के अवकाशप्राप्त शिक्षा निर्देशक डा० एम० एम० कोठारी भी मौजूद थे। उन्होंने इस बार सत्संग में बहुत रुचि ली और आग्रह किया कि मुझे अजमेर के केन्द्र पर सत्संग के लिए अधिक समय देना चाहिए। राजस्थान के यह विद्वान् राज्य की उच्च पदवी पर से अवकाश प्राप्त करने के बाद भी इतने नम्र, प्रेममय और कोमलहृदय के हैं, जिसकी मिसाल नहीं मिलती। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह इसी जीवन में परमलक्ष्य को प्राप्त कर लेंगे।

हम उसी रात को जयपुर श्री महाराज कृष्ण शर्मा के निवासस्थान 16-C मोती मार्ग, बापू नगर पहुँच गये। लोग रात के दस बजे तक हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे। 2 मार्च को प्रात:काल श्री महाराज कृष्ण के निवासस्थान पर

विशाल सत्संग आयोजित हुआ, जिसमें जयपुर के अलावा अजमेर, सीकर और आसपास के इलाकों से आये हुए सत्संगी शामिल हुए। यहाँ पर मैं आपको यह बताना चाहता हूँ कि राजस्थान के सभी केन्द्रों के सत्संगी विशेषकर अलवर और भीलवाड़ा के सत्संगी दिलोजान से यह चाहते हैं कि जयपुर का मानवता पब्लिक स्कूल का केन्द्र विकसित हो और उसमें सत्संग भवन और सत्संगियों के रहने के कमरे भी बनें। इस सम्बन्ध में भीलवाड़ा और अलवर के सत्संगी अनुदान के रूप में काफी धनराशि जयपुर की संस्था को भेज रहे हैं। अमेरिका से श्री माइक मोहरिक ने 30 हज़ार से भी अधिक अनुदान भेजा है। जयपुर केन्द्र के प्रबन्धकों की इच्छा है कि एक कमरा श्री माइक मोहरिक के नाम से बनवा दिया जाये। माइक के बारे में मैं आपको अधिक सूचना किसी दूसरे स्थान पर दूंगा। यहाँ पर मैं इतना कह देना चाहता हूँ कि यह अमेरिकन नवयुवक सुरत-शब्द योग का अनुभव कर रहा है और बहुत बड़ा व्यापारी होते हुए भी मानवता और सन्तमत के असूलों पर चल रहा है। मैं सच्चे दिल से चाहता हूँ कि इस प्रेममय श्रद्धापूर्ण और सच्चे सत्संगी की भक्ति सफल हो और वह इसी जीवन में भक्ति के ऊँचे से ऊँचे दर्जे पर पहुँच जाये।

हम 2 मार्च रात को ही जयपुर से रवाना होकर अलवर पहुँच गये। अलवर वालों को केवल इतना मालूम था कि हम 3 मार्च प्रातःकाल देहली जाते हुए केवल एक घण्टे के लिए अलवर रुकेंगे। हालाँकि हम 2 मार्च की रात को 10 बजे श्री मूल चन्द गान्धी के निवासस्थान पर पहुँचे। 15 मिनट के अन्दर पचासों सत्संगी वहाँ इकट्ठे हो गये। हम 3 मार्च की प्रातःकाल अलवर से रवाना हुए। विदाई के समय पर करीब सभी एकत्रित हुए सत्संगी प्रेम के आँसू

बहा रहे थे। हम उसी दिन करीब 11 बजे प्रातः फरीदाबाद पहुँच गये, क्योंकि वहाँ पर हमारे निवासस्थान पर 3 बजे सायंकाल सत्संग आयोजित होना था। इस सत्संग पर हमारी आशा से अधिक सत्संगी प्रेम और श्रद्धा से सम्मिलित हुए। इस मासिक सन्देश में मैं आपको केवल यहाँ तक के दौरे की सूचना देते हुए इस महीने की सद्भावना भेजता हूँ। मैं सच्चे दिल से चाहता हूँ कि आपको मेरे ऊपर दिये गये अनुभवों से प्रेरणा मिले और आपका लौकिक जीवन सुखमय हो और आपकी आध्यात्मिकता में उन्नति हो।

सबको राधास्वामी !

आपका फकीरमय
मानव

Computer Center

- Computer Consultants
- Data Processors
- Computer Education
- Commercial ...
- C...

Three bodies require three different sorts of food. One food does not nourish all the three proprely; on the other hand, it helps their starvation. They man either be reduced to a skeleton or become emaciated; for, as bodies, they must have their proper food.

It is "attention" that helps in the eating, the digesting and the assimilating of these three various foods.

"Attention" is the "power of application" It should be studied and applied.

"Attention" helps the growth, improves the circumstances, builds the body with the food offered, opens new fields of activities. It is not only the salt of life but Life itself. "Attention" is a very important factor even in the little things of Life.

Never eat with absent-mindedness; otherwise, the food that you eat breeds disease. "Inattetion" means "adsence of Attetion" and It is therefore a defect.

Food eaten with no attention gives no relish, no matter whether it be gross, subtle, or causal.

Gross-body,with groos food fed with attention, performs its function on the Sensual plane; for, the gross-body is made up of Grossity.

Subtle-body,with subtle food fed with attention, perfroms its function on the Mental plane; for, it is

made up of Mentality.

The Causal-body, with causal food fed with attention, perfoms its function on the Causal plane within ; for, it is made up of the Essence of Happiness. It is as if Happiness were its organ.

The function of the physical-body is physical action ; the function of the Mental-body is mental action i.e, thinking; the function of the Causal-body is blissful condition.

Have reverence for food and it will make you revered.

"Attention" is the proper form of respect and "In-Attention" is the im-proper (vile) form of dis-respect.

Work, Thought and Bliss are the pleasures of Life. They are called in the vocabulary of Sanskrit language: 'Karma' 'Gyana' and 'Upasana'. Work and Silence (rest) are the two extremes, and Thought is the mean between them.

But it is "absolutely" necessary that Work should be done with fixed attention. Thoughts must be thought with single mindedness, and silence should be maintained with point-blankness. If there is no attention, no amount of Work, Thought, and silence will be of any avail.

Precepts precede examples; theories precede

practice, and designs precede development. Examples are better than precepts, practices nobler than theories, and development more necessary than designs. But the successor follows the predecessor. "Attention is the root of these twos", without which, neither this nor that is a possibility.

Here we are more concerned with Spirituality than with anything else ; and in this, nothing is so important as "attention". The Chief characteristic of a Spiritual-man is Happiness. If he maintains his happy mood of mind in the severest difficulties of the world, he may be regarded as a spiritual Man He is not disturbed or ruffled with trifles as is the case of an ordinary man.

The physical man seeks Happiness or Pleasure in the Physical circles around him. The Mental-man seeks Happiness or Pleasure in the Mental surroundings around him ; be they thoughts, ideas, sentiments, or beautiful sceneries of Nature that excite his imagination. But the case is otherwise with the spiritual man, he is contented in his poverty. He is pleased in his adversity. Happiness does not desert him. Be the condition whatever it man, he is happy and unrufled.

People think that Spiritual-man should be a "great personality" with long beard, imposing demea- nour and unconcerned with the activities of life,

wholly bent on the acquirement of merit for the next world. Nothing could be more erroneous. A Spiritual-man is a child even in age, lovely and charming even when others lose the charm of Life, and kindly towards others. The sunshine of pleasures does never quit him whether he is young or old. His time is always blessed. His very breath is Heaven and in him there is no desire for any other Heaven. He is happy wherever he has been placed by his destiny.

The World around him might certainly undergo changes : his surroundings may be altered, he himself may be changed physically and mentally, but in his Spirit there is no change. He is the same as he was before.

Q. What is it that makes the Spiritual-man so happy ?

A. It is nothing but "attention", the "application of attention", and the "exercise of the application of attention".

Fixity of attention results in Happiness

Man-of-attention is he who relies more upon himself than upon others. In him there are the attributes of self-reliance, self-control, self-respect, and self-confidence.

Man-of-attention has never been heard either to despise himself or to despise his inferiors. One who

is true to himself, is true to all. He who treats himself well, treats others with consideration as well. Respect yourself and you will be respected by others ; confide in yourself.

Confidence in oneself in the source of Magnanimity. One who trusts in himelf, is always to be relied upon by others and he deserves the confidence of every man with whom he has any sort of dealings.

It is "attention" that creates the qualities of confidence in man ; and it is why he is always happy in his environments, no matter if they appear unpleasant to others. A heavenly Mind turns Hell into Heaven, a hellish Mind turns Heaven into Hell.

One who "controls himself" can control all. One who cannot control himself can control nothing; and it is "attention" that teaches a man the principle of self-mastery and self-sbjugation.

Power lies in self-restraint and not in tha dissipation of energy. The more a man is self-restrained the more powerful he will be. The less a man is self-curbed, the weaker he is. Self-restraint springs from the application of attention towards one's self.

One who "commands attention" is happy, and one who lacks this quality must most necessarily be miserable.

"Happiness is the result of fixity of attention", which is, in truth, what the Yogis aim at.

Fix the "attention" on some center and you will be happy of the result.

As "Happiness is the outcome of fixity of attention", so "Pain is the result of forceful ejectment of attention" from the centre where on it is fixed. Besides this there is no pain.

One is happy while engaged in playing a game of chess, because his attention is fixed on that play. One is happy while playing hockey, football, tennis etc., simply because his attention is rivetted on that particular sport.

Upset the chess-board and the players will become uneasy. Why ? Because there "attention has been forcibly ejected" from it, and so it caused pain.

A man goes fully-bent on enjoying the pleasures of a garden-walk, wherein he is sure to amuse himself in various ways. He feels happy because his attention is directly fixed on the garden, its beautiful flowers and green foliage. He believes that the garden has proved to be the source of his happiness, but he is mistaken there. All the pleasures that he acquired, came through his "fixity of attention" in the garden. No sooner a telegram is come, or a letter received intimating him of the demise of some near and dear friend, gloom spreads around him, and his happiness now is changed into pain. All his

happy attitude has gone and he has become miserable. Why is it so ? Because, his "attention has been forcibly expelled" from the seat of its fixity and, tois has made him sad. This world is neither good nor bad, neither ugly nor beautiful, neither virtuous nor vicious. It is only the attitude of Mind that makes it so. The elements of our Happiness and Misery are concerned more with the fixity and ejectment of "attention" than with anything else.

Divine Message on Self-Realization

A Discourse by

Param Sant Param Dayal
Pt. Faqir Chand Ji Maharaj

Delivered at : **Manavata Mandir Hoshiarpur on 15-3-81**

Radhaswami !

Today is the first day of the first month Chet of the new year, according to Hindu calander. May the new year bring peace and plenty to each one of you.

Shri Swami Ji Maharaj, the founder of the Radhaswami Faith, writes in his book ***Saar Bachan*** : "The month of Chet has come. The Master has awakened his disciples spiritually and made a bridge for them to ferry them, across the ocean of births and deaths.

What is this ocean ? As far as I understand, this ocean is the whirlpool of mind, in which beings are caught up and go on experiencing pleasure and pain, and are being revolved from births to deaths,

and from deaths to births again and again. They will continue to reincarnate ceaselessly and never get out of this whirlpool.

I also do witness the whirlpool of my mind, but now I am not caught up in it, because now I have realized the illusions of these mental creations. They are all Maya (illusion), mere shadows. My physical form appears in the vision of many satsangees and helps to solve their problems. I receive numerous reports from dear satsangees almost every week, that my form appeared to them and saved them from many calamities. But I know for certain, that I do not know, where and when these visions of mine appear to the satsangees and help them miraculously. I wonder. How does it happen and what is the explanation for these happenings ? As far as I can think, I believe it happens because of their own firm belief and the intensified power of their thoughts. The thought has a great power, it can move even the mountains. Their thought power creates my form and their desires are fulfilled.

The supermental Truth is one and the same for all human beings, but the mental creations of the individuals are divergent, which creates misunderstandings and dissensions. You may have faith in anybody. Do worship Rama or Krishna, Devi (goddess) or any other particular Deity. It is all an affair of your own mind. Worshipping Rama, or Krishna,

Jesus, or Mohammad, or Faqir Chand, or any other Guru is not harmful, as long as there is no scope for dissension or hatred. On the supra-mental level, no such forms or visions of individual's, chosen Deities exist, but there is only one universal consciousness. A soul, that remains attached to the physical form of the Guru, or a Deity can never cross the ocean of births and deaths. Faith, based on the true knowledge alone can take you across this whirlpool. Hence, try to transcend the mind, in order to go to the other shore of the ocean.

This single fact, that all the creations of the mind are merely Maya (illusion), has helped me a lot, to transcend the mental plane and go beyond Maya. All the vision, that the mind creates, may be in the form of Rama or Krishna, Gods, Goddesses, or Faqir Baba, or any other saint or Guru, all are nothing, but Maya, the creation of your own mind. This single revelation is enough, to remove all the sectarian dissensions and bickerings in the world. At least, I fiud no difference between Sant Mat and Sanatan Dharma or any other true religion.

The ocean appears impossible to cross, but the perfect Master boosts the morale of his disciples to cross it. How vast in this oeean ? It is as vast, as the range of mental and emotional field. Radhaswami Dayal says, "The Perfect Master demands a fee from the disciple in the form of complete surrender

of his (disciple's) body, mind and all his possessions. When this is offered cheerfully, the perfect Guru ferries the disciple across the ocean. The ignorant people wrongly believe that they should serve the body of the Guru with their body, praise the Guru with their mind and offer all their possessions to the Guru. But this is not the real intent of Radhaswami Dayal. He exhorts, to sit in the company of enlightened ones and understand the secret, that we are not merely body, or the mind and all the possessions are not really ours. He, who understands it fully, can cross the ocean of births and deaths. One may give all the wealth of the world to the Guru, or may serve the body of the Guru day and night continuously, but he will not be able to cross the ocean, unless and until he develops the unshakable faith, that he is neither the body, nor the mind, nor all belongings really are his. One can get salvation or release from the three main bondages, by developing total detachment. According to the religion of the saints, a sincere living Guru should speak the Truth about Reality. That is why Guru is so much glorified in this faith.

Radhaswami Dayal declares, "When an individual's mind is attached to the body, it is attracted towards sensual pleasures. But the same mind can be attracted towards sensual pleasures. But the same mind can be attracted with the aid of the inner sound

and sparkling Light in the inner sky. Many years ago, I used to meditate continuously for twelve hours, at a time. But, now I don't do that. I devote much time for the benefit of dear satsangees, according to the order of my respected Guru.

Data Dayal Ji Maharaj had ordered me to work as a Guru and also told me that I would meet me true Guru in the form of satsangees or disciples, who would take me across the ocean.

When my dear satsangees reported to me about the appearance of my form and doing their work and helping them in the time of their difficulties, whereas I was not aware of it at all, I came to the conclusion that it was due to the suggestions and impressions, already present in the minds of the satsangees. Thus, I began to believe that the visions I see are also the mental creations of mine, and now I am not caught up in the mental region, but am able to transcend it.

Radhaswami Dayal says, "When the consciousness becomes pure i.e., it is thoughtless, or thought-free, the mind becomes no mind. This is called 'Shunya' or 'Mansarover'. It is a state of intuition which is supermental.

In my earlier stages of meditation, I used to experience light—a lot of light. I used to see swans, large flowers and many other attractive things and hear sounds within. One day a man came to attend my satsang. After satsang he came near me

and fell on my feet and said, "Your Holiness ! You are the greatest saint on this earth. I am a meditator. One day I saw a great light and a lake, with blooming flowers in it, where swans were floating, within me. Then suddenly I saw you. You appeared before me and said to me that you would ferry me across." That man did not know me, he had never heard my name. So he tried to find my address and at last he was able to come to my satsang, He immediately recognized me, as the same saint, whose vision had appeared in his meditation. He requested again and again that I should take him to the Destination.

This experience really opened my eyes. I know that I did not go to him, How could he see me ? Now the question is, what is the explanation, what happened to that man ? The explanation simply is, that that man had gathered certain suggestions and impressions from books and persons, in his mind. During his meditation, those suggestions and impressions appeared before him. Why is it so that only Mohammad appears to Muslims, only Cirst to Christians and Rama, or Krishna, or Shiva appears to Hindus only in their meditation ? It is because of their impressions and suggestions, which they get from their childhood. A living master is necessary for your personal guidance. He can remove your misunderstandings and illusions,

The true saints have their eternal identity in this region. It is in this state, where Surat becomes 'Chet' or fully awakened. From this Alakh Loka, nameless, formless invisible Reality or Truth the life has sprung. As compared to that eternity, life and time, are like an ephemeral bubble, or like the instantaneously opening and shutting of one's lips.

All of us and everything else have sprung from this stage, but we have forgotten our identity and have been caught up in the excitement of perishable material objects, which by their very naturs separate us from ths Reality at every step.

The spiritual message of Radhaswami Dayal for Chet, the first month of the Hindu New Year, reveals the stages, in the journey of the spirit towards the realization of perfect on. The diffused consciousness, when recognizes itself, becomes fully self-aware and turns its own search-light inward and disengages itself from non-self, it enters into deep Samadhi (meditation), a sort of profound sleep state. If it can remain self-conscious there and can push deeper and deeper into its perfection, which is its own Real Self, it becomes completely satisfied in the self-experience as Truth Absolute, WIsdom Absolute, and Bliss Absolute.

Swami Ji Maharaj has very kindly revealed the

'Surat-Shabda Marg' for the souls, trying to regain their original pristine glory of that stateless state. I had a keen desire from my childhood to know about the Truth and I had vowed that I would reveal whatever I experience. So I have fulfilled my promise. May everybody be awakened. I wish peace and prosperity to all and to go to your external Home, Radhaswami Abode, after finishing your journey of this world.

DIVINE DESCENT OF GOD
A MESSAGE FOR ALL AGES

by

H. H. Manav Dayal
Dr. Ishwar C. Sharma

Avatara is the Divine Descent of God, the manifestation of God in human form. More precisely we can say that the Avatara is the representation of the son or preservative aspect of God. God's three-fold character of Creater (Father), Preserver or sustainer (Son), and Destroyer or Purifier (Holy Ghost) are accepted by Hinduism, christianity and many other religions of the world. Preserving and sustaing implies compassion for the preserved and the function of the Avatara of course is compassion or love.

Because the galactic center and its off shoot, the sun represents the preservatory or Christ aspect of God as immanent in the spatio-temporal world, the Avataras associate themselves with light as the center of the galaxies and of the cosmos Lord Krishna says, "Among the suns, I am the galactic center." Jesus Christ similarly states, "As long as I am in the

world, I am the light of the world." Ignorant people may take the world "light" metaphorically, considering it simply the remover of darkness, however, light actually has great significance.

Throughout history, the Avatara is called the Lord. In a broader sense, a prophet is also an Avatara, as is every man. The Avatara is also called Bhagvana. The term Bhagvana's rooted in the explanation of the macrocosmic aspect of the threefold manifestation of immanent God in the cosmos. The five dimensions in one branch of the cosmos. (1) Cosmic center (2) galactic center, (3) sun (4) moon and (5) earth represent motion in these respective regions. An Avatara must be the controller of all these regional motions and must possess qualities which indicate such power. But at the same time an Avatara must be unattached to all cosmic and materials creation. An ideal Avatara must possess the following six Bhagas or qualities.

(1) Vairagya or non-attachment (corresponding to the transcendental aspect of God).

(2) Jnana or true knowledge (corresponding to cosmic center, the Father aspect of Immanent God).

(3) Aishvarya, or Mastery (corresponding to galactic center.

(4) Dharma, virtue, or ethical duty (corresponding to the solar aspect.

(5) Yasha, fame (corresponding to the lunar aspect).
(6) Shri, Kingship (corresponding to the earth aspect of God).

The complete Avatars do possess all these six qualities, but every Avatara has a different aim, because of different times, or ages. Hence, the Avataras may differ in the manifestation of the qualities as well as the endowment of some powers, because of the different situations. There are at least three categories of Avatars. The first category manifests preservation only, the second, the awakening or preceptorship and the third manifests both the preservation and the preceptorship. We shall concentrate only on four Avataras here chronologically. The first is Rama, representing the preservatory manifestation of God emphasizing ethics and virtue. The second example is Krishna, who combines the preservatory and the preceptor aspects, representing love and ethics combined. The third example is that of the Buddha, who represents the preceptor aspect only. The fourth is of Jesus Christ, who again combines the preservatory and the preceptor aspects and combines virtue as well as love.

RAMA AVATARA

Rama Avatara is chronologically the oldest in our selection. In the absence of any concrete evidence, the date of this Divine Descent may be put between 5000 B.C., and 4000 B.C.

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

The word "Rama" literally and etjmologically means "that which prevades the whole world". It indicates the omnipresence of God. Rama has been described from four points of view by the great poet Tulsidasa as follows :—

Ek Ram Dashrath Ka Pyara ;
Ek Ram Jag Jis Ka Pasara ;
Ek Ram Hai Palanhara,
Ek Ram Duniya Se Nayara.

Or

One Rama is the son of man ;
One Rama is the Creator immanent ;
One Rama is the preserver of norm ;
One Rama is the transcendent.

This verse affirms the point that on Avatara is the human manifestation of God, the transcendent is Pure Spirit, unaffected by the spatio-temporal changes. In every age Rama or God manifests Himself according to the need of time. To say that God has revealed Himself only once, at one particular place, in one particular age is to degrade the supremacy and infinitude of God. Every Hindu educated or uneducated is worshipped by all Hindus in general and the devotees of Rama in particular. We must understand that the worship of Rama, which consists in singing, communion, and the discourses on the sacred Ramayana (the complete story of Rama) is not exactly the worship of Rama the human being.

But Rama is seen as the Supreme Being, omnipresent, omnipotent and omniscient. The human form, which is the manifestation of the Supreme Person is also historical. God being omnipotent can and does show Himself in the person of human being Rama to his true devotees, who enter into a personal relationship of love and self-surrender. They are Rama-intoxicated.

The great poet who wrote the great epic Ramayana in Hindi language in the sixteenth century was himself Rama-intoxicated.

The power aspect of God is an integral part of Himself. In the case of three of the four examples of the Avataras being presented here, we have evidence of the power of God, being manifested in the form of a woman, accompanying the Avataras. In the case of Rama, it become his wife Sita, in the case of Krishna his senior playmate (who had a pure spiritual devotion for Krishna devoid of cornal desire). In the case of Buddha was his wife Yashodhara, who became his disciple and in the case of Jesus Christ his power aspect was manifested in the person of the Virgin Mary.

Another important fact is that every Avatara presents an ideal for people to follow. The purpose of reading Ramayana again and again is to absorb the virtues of Rama and to try to attain the same level of ethical development. Similarly with Krishna,

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

the Buddha and Jesus Christ. There is a continuity of the ideal and the message conveyed to humanity all the four.

Rama was an ideal son, brother, husband, friend, father,and king. His life affirms that if a person is dutiful in all the spheres of life,if a person remains truthful in the performance of all his duties, he can attain spiritual perfection and ultimately life eternal. The rule of Rama was marked with justice for all and adherence to truth. The ideal moral administration of justice without prejudice or distinction in India is still called Rama Rajya, the rule of Rama, which makes the people equal and fearless, honest, loving and forgiving. Rama emphasizes that happiness here and liberation hereafter can be attained by adhering to one's duty with full faith in God. Rama himself was the embodiment of virtue. Why should one be moral ? Not because morality is imposed by authority. Not because it is a social contact. The sole purpose of virtue and duty is the integrated development of human personality. When a code of conduct is imposed, as a social tradition, without any purpose of self-development, the individual is bound to revolt against it. The message of Rama aims at social harmony, but it goes a step further, by assuring that virtue is the necessary condition for spiritual evolution, ultimately leading to life eternal. Rama is therefore called the "Maryada Purushottam", the

propounder of the attainment of human excellence through ethics or duty. Adherence to virtue is not an onter legislation, but an inner urge ; not a formal confirmation, but an experimental verification of the truth, which ultimately brings about the union of tbe individual soul with God.

KRISHNA AVATARA

The Divine Descent in the person of Lord Krishna is significant because his message is universal, encyclopedic, and applicable to all ages. This Avatara combines in himself, mastery natural laws and over human nature, as well as universal and spiritual love, and also the preceptorship of the highest order. If Rama is regarded as the embodiment of ethical excellence in man, Krishna is the revealer of spiritual excellence, unaffected by material nature, in spite of being physically, socially and ethically involved in human affairs. He shows that like a lotus flower, which grows and blossoms in marshi water, but remains untouched by it, a man may lead on active life in society, by fulfilling all his obligations, yet remain free from attachment, through constant contemplation and love of God. This attitude of transcendence gives a proper place to the relative ethics of right and wrong in human needs and human thinking. There is no doubt that the path of transcendence, the stage beyond good and evil, is through ethics, through virtue, good and righteousness. But these ethical

steps are only the means and not the goal. The goal is transcendence, infinite love and infinite bliss. Morally, as long as man remains on the ethical level, without turning his gaze upward, he is bound by the cycle of lives and deaths.

The appearance of a soul on earth in human form is an opportunity for it to attain eternal life. The individual must utilize this opportunity by leading a balanced life—the life of enjoyment without indulging, dynamic action without attachment and deep love without emotional deplation. All this is possible according to the life and philosophy of Lord Krishna, who Divine Descent was to demonstrate through his life how an ideal person can perform his role successfully, in the Universal Play of God.

There is no antagonism between spiritual and secular life in the message of Lord Krishna. Even the field of battle is referred to as the field of righeousness or duty by Lord Krishna in the Bhagavadgita. The opportunity of laying down one's life and dying on the battlefield, while killing people is regarded as entering the open gates of heaven and the deviation from one's duty is regarded as the most henius crime by Lord Krishna, the propounder of Bhagavadgita. The message of Krishna was both philosophical and spiritual. The most striking message delivered by him in the Bhagevadgita with reference to Avarvada was, "When the extreme indulgence in

unrighteousness and vice oversadows righteousness and virtue, I incarnate Myself at that time........in every age."

So we see that the Divine Descent has a specific purpose and message according to the time and place. The message so conveyed is both particular and universal. It is particular because of the spatio-temporal situation, in which a particular Avatara appears. It is universal because the message is a continuity of the revelation of God. The Buddha and Jesus were also in keeping with this principle of spatio temporal and universal continuity of the message of the revelation to mankind.

THE BUDDHA

The Buddha, literally the Enlightened One, was the Avatara after Lord Krishna, when the mankind had forgotten the message of the Lord and there was injustice, inequality and hatred had reached a Climax in India. The people were suffering a lot and the need of the hour was a straight-forward approach for Moksha or liberation Hence Buddha descend to base his philosophy without giving any importance to the intricases of metaphysics, rituals and institutions. He based his philosophy on the ethics of non-violence and righteousness. He was so much affected by the sufferings of human beings that he wanted and immediate solution to rid them from sufferings. So his awakening was the result of his

longing to find a remedy for the suffering humanity and he called Moksha or Nirvana, which literally means freedom from all sufferings.

The Budda was born as Siddhartha as the first and only son of king Shuddhodana. The astrologers predicted that he would renounce the world. But his father wanted his only son to become a great king. The idea of renouncing secular life was abhorrent for the parents of the child. So every care was taken to provide all the comforts and luxuries to the growing prince. He was married to the most beautiful princess of his time. Her name was Yashodhara. The couple loved each other deeply and when the son Rahula was born king Shuddhodana was confident that the prince would never renounce the worldly life and comforts.

One day the prince decided to visit the town. The king arranged for the public appearance of his darling son with great pomp and show. But all precautions were taken to keep ugliness and misery away from the sight of the prince. But fate delivered at the first step or crossing suffering in the form of a sickman lying on the roadside. The prince who had never seen sickness, was shocked to learn that there is agony and suffering in this world. At the second crossing he saw an old man.

At the third crossing, the prince saw the body of a young wealthy richman, being taken to the cre-

mation ground. He saw that the wife of that young-man and his relatives crying. He asked, "Why are people crying, what has happened to ? What thing is being carried by the men on their shoulders. The innocent grown up prince, who had never seen any dead person, was told that the bier contained the corpse of a young man who had died, and his family was crying, because he would never come back and that death is a necessary end of every human being.

This was the greatest shock to the prince. He returned to his palace. The most compassionate prince could not sleep and decided to find a remedy to rid the humanity for suffering and agony. In the dead of night the prince bade a silent good-bye to his beautiful sleeping wife and son and quickly walked out of the royal palace, never to return again as a prince.

Under the guidance of several teachers, he practiced the ascetic life for twelve years, only to find that his body was reduced to a skeleton, but he had not found his answers. He gave up fasting and went to quietly meditating. One day while in contemplation, under a large banyan tree (which afterwards was called the Bodhi or the "cause of awakening"), he was enlightened with the four noble truths and thus he became the Buddha—the Enlightened One. The four noble truths as

(1) There is suffering in the world ;

(2) There is the course of suffering ;

(3) There is the cessation of suffering and

(4) There is the wav to put an end to the cycle of birth and death by attaining Nirvana (liberation) complete freedom from all sufferings.

According to the Buddha, attachment is the sole cause of suffering in the world and its remedy lies in leading a life of righteousness and meditation without any selfish motives. Buddha laid great stress on non-violence, which in positive form, means love and compassion. In one of his dialogues with his pupils following initiation, the Buddha said, "While you are preaching the noble truths, some persons may abuse you and even humilate you. What will you do ?" Then one of the pupil replied immediately, "Sir ! I would still love them, be compassionate to them and thank them because at least they have not killed me."

The Buddha went on, "It is possible that some one in the audience become violnt and cause injury to you. What will you do ?

The pupil calmly answered, "I will endure the injuries and still bless them, because they have not killed me."

The Buddha added, "Suppose some fanatic persons kill you what will you think of them." The pupil replied, with confidence. "I will still love them and bless them, because the physical coil is the only

hindrance between myself and Nirvana (liberation). I should feel grateful to the persons to help me to reach the final goal by killing my physical body."

The persistence of the positive attitude was the core of Buddha's teachings. He was so touched by the sufferings of the people, caused by their own ignorance that he was prepared to sacrifice everything to bring them enlightenment. His last words were, "Oh God if the sufferings of all the people of the whole world can be transferred to me I am prepared to take them and relieve all the souls of their burden."

The next Avatara Jesus Christ not only wished that the sufferings of the whole of humanity be transferred to him, but he also demonstrated that he could sacrifice his body and earthly life, so that love and peace might be upheld as the symbol of Divinity as the necessary and unavoidable factors for the survival of mankind.

Monthly Message

OF

H. H. PARAM SANT HAZUR MANAV DAYAL
Dr. I. C. SHARMA JI MAHARAJ

My dearest Ownselves

Love and Blessings of the Supreme Compassionate Lord.

In the last monthly message I had informed you about the tour upto 14th February, 1991. The same day we had to board the Punjab Mail at 4 in the evening to reach Jalandhar the next day. But our train was late by two hours and we had to wait for a long time at the Lucknow railway station. It is painful that after Independence the railway employees have become lethargic in discharging their duties. Every day we hear about train accidents. When our country was under the British Rule there was no indiscipline especially among the railway employees. 99% of the trains ran to time. Every employee performed his duties whole-heartedly. Param Dayal Ji Maharaj had been a Station Master. What to speak of his character ! Whenever he wrote personal letters in the office, he would bring his own

paper, pen and ink from home. His truthfulness was matchless. When the railway employees and especially the Station Masters collected thousands of rupees every month by way of bribery, Pt. Faqir Chand Ji Maharaj never took even a penny from anybody. Data Dayal Ji Maharaj regarded Param Dayal Ji as King Harish Chander, the embodiment of truthfulness. Param Dayal Ji would work as a coolie at night whenever he found inconvenience due to lack in income and more expenditure. Due to this truthfulness and honesty he not only acquired distinction in his own department, but also reached the highest spiritual stage ; and by becoming the only Sadguru of our times, he carried thousands of people across the Bhav Sagar (the ocean of the world).

In his discourses, Param Dayal Ji would usually say that a truthful person always lives a happy life. He was so truthful that he saved even his own father from the mire of bribery. Once Faqir Chand Ji Maharaj went to see his father who lived a few miles away from the station. In the evening, after the mutual talk, when he was about to return, his father invited him to dinner. Param Dayal Ji refused the invitation saying that he had no appetite. But before departing for home he took his meals at a hotel. A friend of his father saw him taking his meals at the hotel. The next day the same person while talking to the father asked, "How is it that your

son Faqir Chand was taking his meals at the hotel ?" Mast Ram Ji gave no reply to this question but he felt very sad at heart. Two or three days after this Param Dayal Ji again went to see his father. When Mast Ram Ji asked him the reason of his taking his meals at the hotel, Param Dayal Ji said, "Revered father, if you don't feel offended may I tell the truth ?" Mast Ram Ji told him to say so. Param Dayal Ji said, "Dear father, your income is earned not by honest means but by illegal gratification. That is why I do not want to take meals at your place." Tears welled up in the father's eyes when the son told the bitter truth in such a sweet manner. From that day Masat Ram Ji gave up accepting bribes. Truth and Love too are infectious. If a person is truthful, his associates, naturally, imbibe truthfulness. This applies to Love also. Love begets love and hatred brings hatred.

We reached Jalandhar at about 12 noon and thence reached Manavata Mandir at 2 in the afternoon. 17th of February was fixed for the monthly satsang. And as ever satsangis from outside had reached the Mandir in great numbers by the 16th. So, at night on the 16th the Satsang Hall was filled to capacity and many satsangis found it difficult to find even a little space to sit. Like every month the night satsang continued for a long time and the satsangis sat through lost in Bliss. The next morning,

the satsangis from Batala served tea and breakfast to the hundreds of satsangis present on the occasion. Previously also I have intimated you through these messages about the devotion of these satsangis. They come to Manavata Mandir every month positively and many of them stay here for 3 or 4 days. Specially the family members of Sh. Ram Partap Ji and Dr. Chander Negi Ji, inspite of difficulties in travelling, come and stay in the Mandir not only every month but sometimes after every fifteen days also. The satsangis who come to Mandir for Sadhana, return extremely happy. They say that they get immense peace on staying in Manavata Mandir. This is natural because for scores of years the nectar of Param Dayal Ji's discourses had been showered here. The rays of his thoughts and experiences, and the vibrations of Truth are ever present in the Mandir. Even after Param Dayal Ji's leaving his mortal coil, the chain of Truth and satsangs has continued as before. Gradually the number of not only satsangis but also of the true followers of Para-Bhakti is increasing day by day. The Monthly Satsang was very affective as always.

The daily satsangs also continued till February 22. On 23rd February we started for Alwar, Bhilwara, and Jaipur via Delhi. After staying for the night at Delhi, we started for Alwar in a car at 7 in the morning. The driver of the car being a new

person, we followed a wrong route. Inspite of this, we reached at the house of Sh. Mool Chand Gandhi, Advocate at 1-00 p.m. The news of our reaching there spread in the neighbourhood and in a few minutes about a hundred satsangis gathered there to meet us. The centre at Alwar is very old and the devotion and faith of the satsangis there is very deep. The old satsangis of Alwar Sh. Mohan Lal Ji usually narrates Param Dayal Ji's first visit to Alwar.

According to him, about 50 years ago, many satsangis came from Alwar to Salwan Public School on Dusehra to attend the satsang. Sh. Mohan Lal and Sh. Jagan Nath Khurana among them were deeply impressed. One day before the conclusion of the Dusehra satsang, they approached Param Dayal Ji in deep devotion and requested him to bless Alwar with his visit. Sh. Mohan Lal had the desire that with the grace of Param Dayal Ji he might be blessed with a son. Param Dayal Ji spoke rather harshly, "I am not your servant. If you want to take me to Alwar, donate three thousand rupees to the Mandir." The satsangis agreed and the next morning they borrowed the required money from somewhere and presented it to Sh. Gopal Dass Ji in the presence of Param Dayal Ji. The next day when Param Dayal Ji was leaving for Alwar by train with Sh. Gopal Dass Ji and other satsangis of Alwar, he addressed Gopal Dass Ji and said, "Gopal Dass, return them the three

thousand rupees. I was only testing them." The satsangis of Alwar were overwhelmed at this gesture of benevolence and tears came in their eyes. From that day a firm bond was established between Param Dayal Ji and Alwar. Param Dayal Ji used to visit Alwar every year while touring Rajasthan. Following this tradition, I too visit Alwar every year for satsang. It was perhaps in 1986 that I was travelling in a Matador with Acharya Shabdanand Ji and some satsangis of Alwar and Sadhna when I spoke to Sadhana, "It will be proper to read the Shabd 'Satguru Param Dayal Ri Koi Kadar na jane' but Sadhana said, "Maharaj ! I think the Shabd of Faqir's Lakshman will be proper for the last satsang." To this, I agreed.

The last satsang started at 7 p.m. and all the satsangis blissfully partook of that ecstasy for three hours with their eyes rivetted to my face. When the satsang concluded, Jagan Nath Khurana said, "Today's satsang was wonderful ! We all experienced Bhandaro Mata Ji in the form of Sadhana and Param Dayal Ji Maharaj in your form. What a coincidence ! Param Dayal Ji's last satsang in Alwar in 1981 too was on the same Shabd." I am telling you about such incidents in the Monthly Message so that you may not forget that the stream of satsang flows only through the Grace of the Lord. That is why it is said that :

'Only satsang bestows the power to discriminate
And that is possible only through Lords' Grace'.

This time we stayed in Alwar for two days and on both the days the satsangs were very effective. We had to stay on at Alwar on 26th at the request of the satsangis, but we sent the car alongwith Acharya Shabdanand and Acharya Lal Chand to Bhilwara. I, alongwith Bhagya Mata Ji, started for Bhilwara in tha Pink City Express on 27th February. Unfortunately, the train was late by two and a half hours and we reached Bhilwara at six in the evening. Hundreds of satsangis were present at the railway station to welcome us. On February 27 and 28 and March 1, magnificent satsangs were held at the residence of Sh. Tejendra Mani, the grandson of Krishak Ji. To these satsangs capt. Lal Chand Ji made useful contribution. In all my satsangs the satsangis from Alwar, Chittaurgarh and the neighbouring places felt a deep wave of love and listened to me spell bound. The family members of Sh. Tejendra Mani Gupta, Acharya Gitabai Saraf, Acharya Mohini Bai and Mrs. Budhmati are among those satsangis who have tasted the nectar of complete surrender and deep devotion. On such occasions the satsangis from Ajmer, Vyavar ard Chittaurgarh all gather at Bhilwara and there is no limit to their devotion. So it is not proper to compare the devotion of satsangis from one place to the devotion of satsangis from another. The satsangis of Bhilwara complained for my not being able to give them more than two days even

after a period of two years. To this I replied, "My dear satsangis of Bhilwara ! I honour your devotion and love and deem your complaint as justified because children have a right over their parents and they can always make demands on them. But I want to impress upon you that your devotion, inspite of being so deep, is sometimes not unblemished. When you say that you have been waiting for six hours and I reached late—this shows some lapse in your devotion. I have accepted this complaint of yours taking it as the innocent prattle of a child. People never grumble if their Leaders and Ministers come late even by ten hours. When your love for me and mine for you is endless, you should not entertain such thoughts. I shall give you more time in future. This, I am saying most sincerely and from the depths of my heart.

This satisfied all the satsangis and they became very happy. Starting at 3 p.m. on March 1, from Bhilwara, we reached Ajmer at 5-30 p.m. at 'Faqir Bhawan', the residence of Sh. Sumer Singh Rathore. Many satsangis had gathered there. Among those who attended the hour long satsang was Dr. M. M. Kothari, Director (retired), Department of Education, Rajasthan. This time he showed keen interest in the satsang and requested me to spare more time for the Ajmer Centre. This learned man of Rajasthan has served at a very high post of the state and yet he is

incomparably humble, loving and kind-heatred. I am fully confident that he will attain the Ultimate Goal in this very life.

The same night we all reached at 16-C, Moti Marg, Bapu Nagar, the residence of Sh. Maharaj Krishan in Jaipur. It was already 10 p.m. but people were still waiting for us. In the morning on March 2, a grand satsang was arranged at the residence of Sh. Maharaj Krishan in which besides Jaipur the satsangis from Ajmer, Seekar, and the neighbouring aseas participated. Here I want to tell you that satsangis from all the Centres of Rajasthan and especially those from Alwar and Bhilwara sincerely yearn that the Manavata Public School Centre at Jaipur should be developed and it must have the satsang building as well as rooms to accommodate satsangis. In this connection the satsangis of Alwar and Bhilwara are sending a lot of money as donation to the centre at Jaipur. Mr. Mike Mohori from America has sent more than Rs. 30,000 as donation. Those who manage the affairs of the Jaipur Centre want to construct a room in the name of Mr. Mike Mohori. I shall give you more information about Mr. Mike Mohori at some other place. Here I want to tell you only this that this American youngman is experiencing the Surat-Shabd Yog (the Yoga of Light and Sound) and inspite of being a flourishing and busy businessman, is living according to the principles of Manavata and the Santmat. I earnestly desire

that the devotion of this loving, devoted and truthful satsangi may bear fruit and in this very life he may reach the pinnacle of Bhakti !

We started from Jaipur on March 2, and reached Alwar the same day. The people at Alwar knew only this much that on our way back to Delhi on the 3rd March, we shall stay at Alwar only for one hour. Though it was 10 p.m. when we reached the residence of Sh. Mool Chand Ji, yet scores of satsangis gathered there within 15 minutes. We started from Alwar in the morning on March 3. At the time of our depature almost all the satsangis had gathered there and they bade us a tearful farewell. The same day at about 11 a.m. we reached Faridabad as a satsang was scheduled to be organised there at 3 p.m. at our residence. In this satsang the number of satsangis was much more than we had expected.

In this Monthly Message, giving you the details of the tour upto this, I very honestly and sincerely send you my best wishes and blessings for this month. I earnestly desire that you should get inspiration from my experiences narrated above and your worldly life be full of happiness and you may progress in your spiritual life.

My Radhaswami to you all.

Yours in Faqir,

Manav.

आवश्यक सूचना

सभी सत्संगियों को सूचित किया जाता है कि परमसन्त हज़ूर मानव दयाल जी महाराज अमेरिका से 12 जुलाई को होशियारपुर पहुँच रहे हैं ।

आवश्यक सूचना

सभी सत्संगियों को सूचित किया जाता है कि जून महीने की पत्रिका में परमसन्त हज़ूर मानव दयाल जी महाराज का दौरा जो 16 से 21 जुलाई को अमोन, यमुना-नगर और रामगढ़ का दिया था विशेष कारणों से नहीं हो पायेगा ।

आवश्यकता

मानवता मन्दिर कार्यालय में काम करने वाले सेवादारों की आवश्यकता है, रिटायर्ड इच्छुक व्यक्ति इसके लिए प्रार्थना पत्र भेज सकते हैं और सेक्रेटरी महोदय से मिल सकते हैं ।

जनरल सेक्रेटरी

शुद्धिपत्र

पृ.	पं.	अशु.	शु.
52	2	चटनाएँ	घटनाएँ

Regd. No. 26265/74 JULY 10th 1991

MANAV MANDIR NWHSP—7

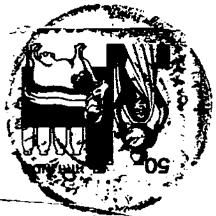

Address

2780 / 1656. Sh. K. Venkateshwarlu 13-2-100.

H. No. ~~13/279~~—Anand Bhavan

Mawada, P. O. Warangal (A.P.).

From :

MANAVATA MANDIR

SUTEHRI ROAD,

HOSHIARPUR - 146 001

Phone No. : 2639

Shiv Dev Rao Press, Manavata Mandir, Hoshiarpur (Pb.)